अध्याय – 18

पारिस्थितिक तंत्र – संरचना एवं कार्य

(Ecosystem : Structure and Function)

प्रकृति में सभी जीव परस्पर एवं अपने भौतिक वातावरण के कारकों के साथ अन्योन्यक्रिया करते रहते हैं। इन क्रियाओं के परिणामस्वरूप जीवों और उनके भौतिक वातावरण में एक संतुलन बना रहता है तथा पदार्थों का आदान–प्रदान एवं उर्जा का प्रवाह होता रहता है, जो एक समाकलित इकाई बनाते हैं, जिसे पारिस्थितिक तंत्र या पारितंत्र कहते हैं। पारितंत्र, पारिस्थितिकी की मूल प्रकार्यात्मक इकाई है। वास्तव में पारिस्थितिकी का अध्ययन पारिस्थितिक तंत्रों का अध्ययन ही है, जो प्रकृति के समतुल्य है। इकोसिस्टम शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग इंग्लैण्ड के सर आर्थर टेन्सले ने 1935 में किया था। टेन्सले के अनुसार ''वातावरण के जैविक एवं अजैविक कारकों के समाकलन के परिणामस्वरूप निर्मित तंत्र पारिस्थितिक तंत्र कहलाता है। प्रकृति में मुख्य रूप से दो घटकों (1) जैविक (जन्तु एवं वनस्पति) तथा (2) अजैविक वातावरण का समावेश होता है। टैन्सले से पूर्व तथा बाद में भी जीव–पर्यावरण सम्बन्धों को विविध नामों से सम्बोधित किया जाता रहा है। जैसे कार्ल मोबिस ने बायोसिनोसिस, फोर्ब्स ने माइक्रोकोज्म, मिश्रा ने इकोकोज्म आदि, परन्तु इकोसिस्टम शब्द को ही विश्वव्यापी मान्यता प्राप्त हुई।

पारिस्थितिकी तंत्रों के प्रकार (Types of Ecosystem)

जैवमण्डल में विभिन्न प्रकार के पारितंत्र संचालित होते है। इनमें से कुछ प्राकृतिक हैं तथा कुछ मानव द्वारा निर्मित है, जिन्हें कृत्रिम पारिस्थितिक तंत्र कहते हैं। तालाब, झील, मरूस्थल, वन आदि प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र है जबकि खेत, बाग बगीचे, जल जीवशाला आदि कृत्रिम पारिस्थितिक तंत्र के उदाहरण है। पारिस्थितिक तंत्र का आकार भिन्न–भिन्न हो सकता है, जैसे छोटा ताल या विस्तृत वन क्षेत्र। अंतरिक्षयानों तथा जल जीवशालाओं को मानव अभियांत्रिक पारिस्थितिक तंत्र माना जा सकता है। यहॉ यह जान लेना आवश्यक है कि कोई भी पारिस्थितिक तंत्र, स्वतः पूर्ण नहीं होता वरन् अन्य पारिस्थितिक तंत्रों से सम्बन्धित होता है अर्थात अन्योन्याश्रित होता है जैसे समुद्री परितंत्र समीपस्थ स्थलीय पारितंत्रों पर खनिज पदार्थों के लिये निर्भर रहता है और स्थलीय पारितंत्र समुद्र पर जल की नियमित आपूर्ति के लिये आश्रित होते हैं। कोले ने इसके लिये पारिस्थितिकमण्डल शब्द का प्रयोग किया है तथा प्रकृति में पारितंत्रों को दो प्रमुख वर्गो में बांटा है (चित्र 18.1)।

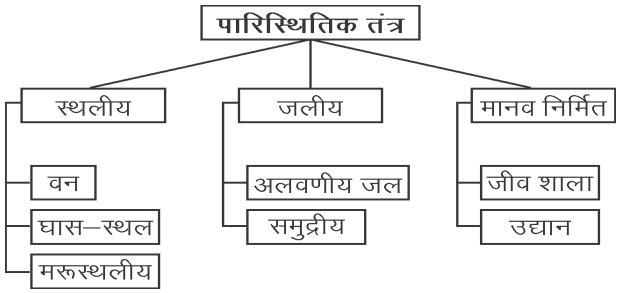

चित्र 18.1 : पारिस्थितिक तंत्रों का वर्गीकरण

1. स्थलीय (Terrestrial) जैसे वन, घासस्थल, मरूस्थल आदि।

2. जलीय (Aquatic) इन्हें पुनः निम्नानुसार विभेदित किया जाता है।

(क) अलवण जलीय – जिसमें (1) सरित (बहता पानी) जैसे झरना, नदी, सरिता आदि तथा (2) स्थिर जलीय (रूका हुआ जल) जैसे झील, तालाब, पोखर, अनूप आदि।

(ख) समुद्रीय या लवण जलीय – जैसे समुद्र, ज्वारनद्मुख, लवण झीलें आदि सम्मिलित है।

पारिस्थितिक तंत्र की संरचना एवं कार्य (Structure and Function of Ecosystem)

किसी भी पारिस्थितिक तंत्र के दो प्रमुख पहलू हैं, संरचना और कार्य। संरचना के अन्तर्गत पारितंत्र के जीवों और पर्यावरण के अजैव घटकों को सम्मिलित किया जाता है। कार्य से हमारा अभिप्राय पारिस्थितिक तंत्र मे जैव ऊर्जा का प्रवाह तथा पोषक

खनिज पदार्थो के परिसंचरण से है। वस्तुतः प्रकृति में ऊर्जा प्रवाह एवं भौतिक तत्वों के परिसंचरण के कारण ही विभिन्न जीव व पर्यावरण के घटक एक पद्धतिबद्ध इकाई के रूप में विद्यमान रहते है।

पारिस्थितिक तंत्र की संरचना

पारितंत्र के मुख्य संरचनात्मक अभिलक्षण, जाति संरचना एवं स्तरीकरण है। इसको जीवों के भोज्य सम्बन्धों द्वारा भी दर्शाया जा सकता है। इसके अन्तर्गत जातियों की संख्या, जीवों का जैवभार, जीवनवृत और वितरण आदि का अध्ययन किया जाता है। इसके अतिरिक्त अजैव पदार्थों की मात्रा तथा वितरण का अध्ययन भी सम्मिलित है।

पारिस्थितिक तंत्र के घटक (Component of Ecosystm)

पारितंत्र की संरचना के दो मुख्य घटक होते है–

1. जैविक घटक (Biotic Components) – उत्पादक या स्वपोषी पौधे, उपभोक्ता तथा अपघटक जैविक घटक है।

2. अजैविक घटक (Abiotic Components) – खनिज पदार्थ, जल, गैसें, जलवायवीय कारक, ऊर्जा आदि अजैविक घटक है। यद्यपि पारितंत्र के ये संरचनात्मक घटक अवियोज्य होते है, तथापि अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इन्हें पृथक–पृथक

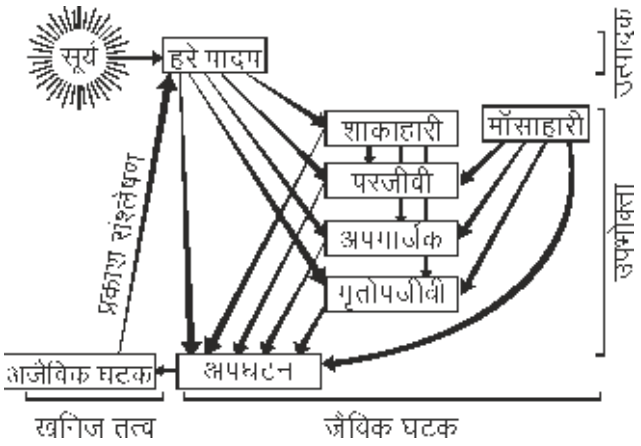

चित्र 18.2 : एक पारितंत्र के विभिन्न घटक और उनके पारस्परिक संबंध

रखा जाता है (चित्र 18.2)।

1. जैविक घटक या जीवीय घटक – इसमें सभी जीवों को सम्मिलित किया जाता है, जो प्रकृति में समुदाय के रूप में रहते है। ये सभी समुदाय परस्पर किसी न किसी रूप में अन्तर सम्बन्धित होते है। लिण्डमेन के अनुसार सभी जीवों के परस्पर अन्तरसम्बन्धों का प्रमुखतः आधार पोषण है। अतः उन्होंने पोषक गतिकी अवधारणा प्रस्तुत की थी। वास्तव में जैविक घटक किसी भी पारिस्थितिक तंत्र की पोषक संरचना को दर्शाते हैं। पोष स्तर की दृष्टि से जीवों को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है – (i) स्वपोषी या उत्पादक (ii) विषमपोषी या उपभोक्ता

(i) **स्वपोषी या उत्पादक** (Autotrophs or Producers)– पारितंत्र के वे सभी पादप एवं जीवाणु सदस्य जो प्रकाश संश्लेषण या जीवाणुक प्रकाश संश्लेषण या रसायन संश्लेषण क्रिया द्वारा अपने भोजन का स्वयं निर्माण करने में सक्षम होते है, स्वपोषी या प्राथमिक उत्पादक कहलाते हैं। ये पौधे तथा जीवाणु सभी प्रकार के जीवों के लिये प्राथमिक उत्पादक होते हैं क्योंकि ये सौर ऊर्जा को रासायनिक स्थितिज ऊर्जा में परिवर्तित कर कार्बनिक पदार्थों (यथा खाद्य पदार्थ) के रूप में संचित करते हैं, जो विषमपोषी स्तर के जीवों के लिये परोक्ष या अपरोक्ष रूप से भोजन के रूप में प्रयुक्त होता है। कोरमोन्डी ने इन्हें उत्पादक की जगह परिवर्तक या पारक्रमी बताया।

(ii) **विषमपोषी या उपभोक्ता** (Heteroptroph or Consumers) – वे सभी जीव जो अपना भोजन स्वयं निर्माण करने में सक्षम नहीं होते हैं व प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्राथमिक उत्पादकों द्वारा निर्मित या संचित भोजन पर निर्भर करते हैं, **विषमपोषी या उपभोक्ता** कहलाते हैं। इन्हें पुनः दो श्रेणियों में बाँटा जाता है।

(क) वृहद/गुरू उपभोक्ता या भक्षपोशी या जीवभक्षी– वे जीव जो जटिल कार्बनिक पदार्थों (भोजन) को अपनी पाचन क्रिया द्वारा सरल कार्बनिक पदार्थों में परिवर्तित करते हैं, वृहद/गुरू उपभोक्ता या भक्षपोशी या जीवभक्षी कहलाते हैं। जीवित प्राणी एवं पौधे इनका भोजन होते हैं। ये शाकाहारी (शाक या पादप भक्षी), मॉसाहारी (जन्तुभक्षी) अथवा सर्वहारी (सर्वभक्षी अर्थात् सब प्रकार का भोजन ग्रहण करने वाले जीव) हो सकते हैं।

1. प्राथमिक उपभोक्ता (Primary Consumer) – ये प्रथम श्रेणी के उपभोक्ता हैं, जो अपना भोजन सीधे ही हरे पादपों या स्वयंपोषी से प्राप्त करते हैं। अनेक शाकाहारी जन्तु जैसे गाय, बकरी, हिरण आदि पौधों में संचित ऊर्जा के प्रथम उपभोक्ता होने से इन्हें प्राथमिक उपभोक्ता कहा जाता है।

2. द्वितीयक उपभोक्ता (Secondary Consumer)– ये द्वितीय श्रेणी के उपभोक्ता हैं, जो शाकाहारी जन्तुओं या प्राथमिक उपभोक्ताओं को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं। इन्हें मॉसाहारी भी कहते हैं, जैसे मेंढक, कुत्ता, बिल्ली, लोमड़ी, चीता आदि।

3. तृतीयक उपभोक्ता (Tertiary Consumer)– कुछ मॉसाहारी जीव जो दूसरे मॉसाहारी जीवों या द्वितीयक उपभोक्ता से अपना भोजन ग्रहण करते हैं, तृतीयक उपभोक्ता कहलाते हैं। कुछ उपभोक्ता चरम मॉसाहारी प्रवृति के होते हैं, जिनको दूसरे जन्तु मार कर नहीं खाते हैं। इन्हें उच्च या शीर्ष उपभोक्ता कहते

है जैसे गिद्ध, मोर, बाज, शार्क, मगरमच्छ, किलकिला (Kingfisher) आदि।

उपभोक्ता स्तर पर भी कार्बनिक पदार्थों का निर्माण या स्वांगीकरण होता है। ये पाचन क्रिया द्वारा पौधों के कार्बनिक यौगिकों को अपने शरीर के कार्बनिक यौगिकों में बदल देते हैं, जो अगली पोषण रीति के लिये आहार या भोजन का काम करता है। अतः उन्हें द्वितीयक उत्पादक भी कहते हैं, जैसे मधुमक्खियाँ, गाय, बकरी आदि।

(ख) लघु या सूक्ष्म उपभोक्ता या अपघटक जीव – इस श्रेणी के सूक्ष्मजीव विभिन्न कार्बनिक पदार्थों को उनके निर्माणकारी अवयवों में विघटित कर देते हैं। यह सूक्ष्मजीव अपने पाचक एन्जाइमों द्वारा उत्पादक तथा उपभोक्ताओं के मृत शरीरों के जटिल कार्बनिक पदार्थो को सरल अकार्बनिक पदार्थों में परिवर्तित कर देते हैं। अतः इन्हें रूपान्तरक भी कहते हैं। इस प्रक्रिया में सूक्ष्म उपभोक्ता अवशोषण द्वारा अपना भोजन प्राप्त करते हैं। विघटन की इस क्रिया में जो ऊर्जा निकलती है, उसे अपघटक अपनी विभिन्न जैविक क्रियाओं में उपयोग करते हैं। मुख्य अपघटक जीवाणु, कवक, ऐक्टिनोमाइसिटीज आदि जीव हैं। इन्हें मृतोपजीवी या परासरणजीवी भी कहते हैं। इस क्रिया में विमुक्त सरल अकार्बनिक पदार्थ पुनः उत्पादकों को उपलब्ध हो जाते हैं। अतः लघु उपभोक्ता पारिस्थितिक तंत्र के अस्तित्व के लिये अपरिहार्य हैं।

अजैविक या अजीवीय घटक – भौतिक पर्यावरण के सभी निर्जीव पदार्थ उसके अजैविक घटक कहलाते हैं। ओड़म ने अजैविक घटकों को तीन भागों में विभक्त किया है–

(अ) अकार्बनिक पदार्थ – इसमें जीव वृद्धि के लिये अति आवश्यक खनिजों के लवण तथा गैसें सम्मिलित हैं। इसमें पोटेशियम, कैल्सियम, मैग्निशियम जैसे खनिज, सल्फेट, नाइट्रेट, फॉस्फेट जैसे लवण तथा ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बन डाइऑक्साइड जैसी गैसें सम्मिलित हैं। ये सभी स्वपोषियों या उत्पादक घटकों (जैसे हरे पादप) के पोषक तत्व अथवा अपरिष्कृत सामग्री है। सर्वप्रथम उत्पादक इनका उपयोग करते हैं, उत्पादकों से ये उपभोक्ताओं में जाते हैं तथा वहाँ से मुक्त होकर फिर से पर्यावरण में आते रहते हैं। पारिस्थितिक तंत्र में इस प्रकार खनिज पदार्थों का निरन्तर चक्रीय भ्रमण होता रहता है, जिसे जैव भू–रासायनिक चक्र कहते हैं।

(ब) कार्बनिक पदार्थ – इन पदार्थों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। प्रथम श्रेणी में कार्बोहाइड्रेट्स, प्रोटीन, लिपिड्स जैसे कार्बनिक यौगिक एवं इनके अपघटन से उत्पन्न पदार्थ जैसे यूरिया, ह्यूमस आदि जो वातावरण में अकार्बनिक पदार्थों के समान मुक्त अवस्था में मिलते हैं, सम्मिलित हैं दूसरी श्रेणी में वे कार्बनिक पदार्थ हैं, जो केवल जीवित कोशिकाओं में पाये जाते हैं जैसे एडिनोसीन ट्राई फॉस्फेट। तीसरी श्रेणी में वे पदार्थ समाहित हैं, जिनको उपरोक्त दोनों के बीच की कड़ी माना जा सकता है, जैसे पर्णहरित एवं डीएनए। इस श्रेणी के पदार्थ जैविक एवं अजैविक घटकों के मध्य की योजक कड़ी का काम करते हैं।

(स) जलवायुवीय कारक – इसके अन्तर्गत वायु, प्रकाश, आर्द्रता, ताप, वर्षा, सौर ऊर्जा आदि भौतिक कारक आते हैं, जो पारितंत्र में उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं की संख्या का निर्धारण करते हैं। इनका विस्तृत वर्णन पूर्व के अध्याय में किया जा चुका है।

किसी पारिस्थितिक तंत्र में नियत समय में उपस्थित अजैव पदार्थों की मात्रा को स्थायी अवस्था या स्थायी गुणता कहा जाता है, जबकि जैविक पदार्थो या कार्बनिक पदार्थों की कुल मात्रा को खड़ी फसल या स्थित शस्य कहते है। इसे इकाई क्षेत्र में उपस्थित जीवों की संख्या या जैवभार द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

पारिस्थितिक तंत्र के कार्य (Function of Ecosystem)

किसी भी पारिस्थितिक तंत्र के परिचालन में उसकी संरचना के साथ–साथ उसके क्रियात्मक स्वरूप की जानकारी भी आवश्यक है। ऊर्जा प्रवाह तथा खनिज पदार्थो का चक्रीकरण दो महत्वपूर्ण पारिस्थितिक प्रक्रम है, जो पारिस्थितिक तंत्र के कार्य से सम्बद्ध है। किसी भी पारितंत्र का कार्यात्मक स्वरूप निम्न घटकों एवं प्रक्रियाओं से स्पष्ट किया जा सकता है।

1. पारिस्थितिक स्तूप (Ecological Pyramids)
2. खाद्य शृंखला एवं खाद्य जाल (Food chain & Food web)
3. ऊर्जा प्रवाह (Energy Flow)
4. खनिज पदार्थों का चक्रीकरण (Cycling of Minerals)

1. पारिस्थितिक स्तूप – पारितंत्र की खाद्य शृंखला में प्राथमिक उत्पादकों से लेकर चरम माँसाहारियों तक कई खाद्य रीतियाँ होती है। प्रत्येक खाद्य रीति खाद्य शृंखला का एक चरण होता है तथा विभिन्न चरण परस्पर सम्बद्ध होते हैं, जिससे पारितंत्र की सुनिश्चित पोषण स्तर एवं कार्यात्मक संरचना बनती है। उत्तरोत्तर खाद्य रीतियों के परस्पर आनुपातिक संबंधों को जीव संख्या, जैवभार तथा ऊर्जा प्रवाह के आधार पर आलेखी निरूपण किया जावे तो एक स्तूपाकार आकृति बनती है। जिसमें आधार प्रथम पोषण स्तर (उत्पादक) का बना होता है और उसके त्रिभुजाकार अन्य पोषण स्तर क्रम से (शाकाहारी – मांसाहारी) बने होते है। इन आकृतियों को पारिस्थितिक स्तूप कहा जाता है।

स्तूप के प्रकार – पारिस्थितिक स्तूप तीन प्रकार के होते हैं –
(अ) जीवों की संख्या के स्तूप

(ब) जैवभार के स्तूप

(स) ऊर्जा के स्तूप

इस संकल्पना को सर्वप्रथम चार्ल्स इल्टन ने प्रस्तुत किया था। इसी कारण इन्हें अल्टोनियन पिरैमिडस भी कहते हैं।

1. जीव संख्या के स्तूप – पारिस्थितिक तंत्र में प्राथमिक उत्पादक तथा क्रमशः विभिन्न श्रेणी के उपभोक्ताओं की संख्या

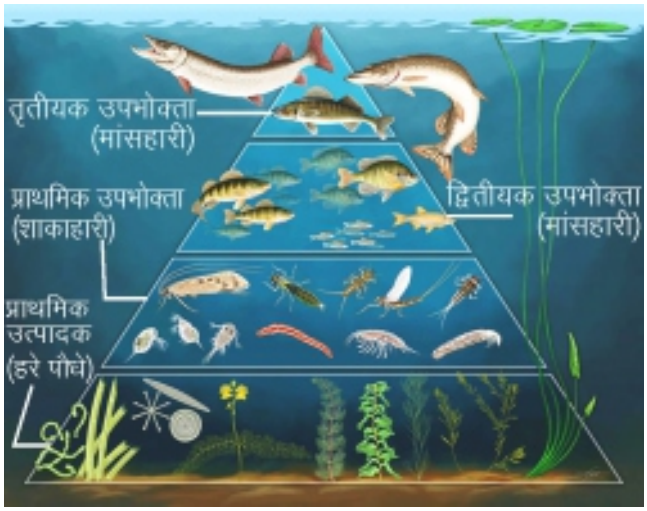

चित्र 18.3 : जीव संख्या का सीधा पारिस्थितिक स्तूप

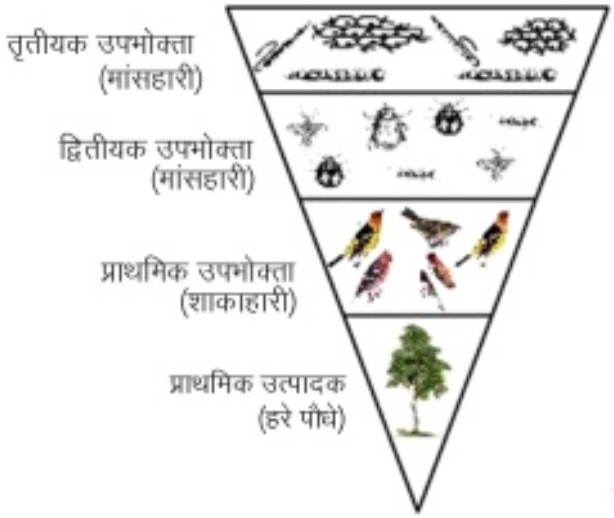

चित्र 18.4 : जीव संख्या का प्रतिलोमी स्तूप (परजीवी खाद्य शृंखला)

का सम्बन्ध दर्शाने वाला आलेखी निरूपण को संख्या का स्तूप कहा जाता है। स्तूप के आधार पर प्राथमिक उत्पादकों की संख्या रखी जाती है। घासस्थल, वन, तालाब, खेत में जीव संख्या का आरेखी निरूपण सीधा स्तूप बनाता है (चित्र 18.3)। परजीवी खाद्य शृंखला वाले परितंत्र में पारिस्थितिक स्तूप सदैव प्रतिलोमी या उल्टा होता है क्योंकि एक वृक्ष या जीव अनेक परजीवियों की वृद्धि के लिये पर्याप्त होता है (चित्र 18.4)।

2. जैवभार के स्तूप – पारिस्थितिक तंत्र में प्राथमिक उत्पादक तथा विभिन्न श्रेणी के उपभोक्ताओं के कुल जैवभार को

चित्र 18.5 : जीवभार का सीधा पारिस्थितिक स्तूप

दर्शाने वाला आलेखी निरूपण जैवभार स्तूप कहलाता है। यह सीधा या प्रतिलोमी हो सकता है। वन, घासस्थल तथा खेत पारिस्थितिक तंत्र में जैवभार का स्तूप सीधा होता है। इसमें उत्पादक से उपभोक्ताओं के उत्तरोत्तर क्रम में जैवभार की लगातार कमी होती जाती है (चित्र 18.5)। विशाल वृक्ष पारिस्थितिक तंत्र में जैवभार का पिरैमिड सदैव सीधा होता है, जबकि जीव संख्या में यह स्तूप प्रतिलोमी होता है।

जलीय पारिस्थितिक तंत्र जैसे तालाब, झील, पोखर आदि

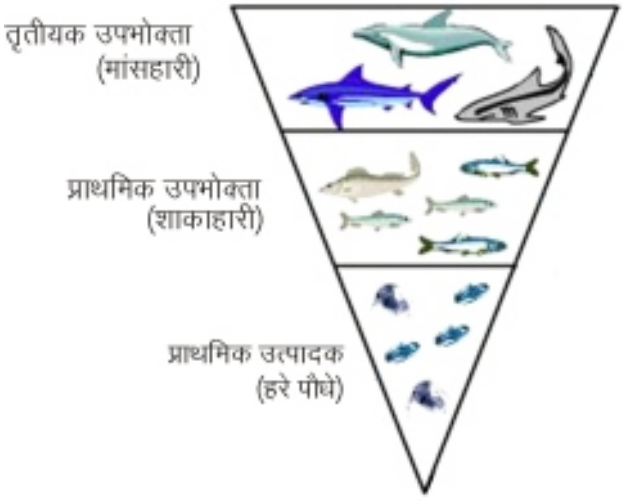

चित्र 18.6 : जीवभार का प्रतिलोमी पारिस्थितिक स्तूप

में जैवभार का स्तूप उल्टा या प्रतिलोमी होता है। इनमें पादप प्लवक, शैवाल, डायटम्स, डेस्मीड्स आदि प्राथमिक उत्पादक होते हैं, जिनका जैवभार प्राथमिक उपभोक्ताओं (जैसे शाकाहारी मछलियाँ) से कम होता है। बड़ी माँसाहारी मछलियाँ जो शाकाहारी मछलियों को खाती हैं, इनका जैवभाव सर्वाधिक होता है। इस कारण इस प्रकार के पारितंत्र में जैवभाव का पिरैमिड प्रतिलोमी होता है (चित्र 18.6)।

3. ऊर्जा के स्तूप – पारिस्थितिक तंत्र के इकाई क्षेत्र में किसी समयावधि विशेष में विभिन्न पोषस्तरों द्वारा उपयोग की गई कुल ऊर्जा की मात्रा के आरेखी निरूपण को ऊर्जा का स्तूप कहते हैं, जो सदैव सीधा ही होता है क्योंकि उत्पादकों से प्रत्येक क्रमिक उपभोक्ता स्तर पर ऊर्जा की कुल मात्रा शनैः शनैः कम होती जाती है।

हरे पौधे (प्राथमिक उत्पादक) सौर ऊर्जा को ग्रहण कर प्रकाश संश्लेषण द्वारा स्थितिज रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित कर देते हैं। हरे पौधों में संचित यह ऊर्जा सब पोषण स्तर के प्राणियों की ऊर्जा से अधिक होती हैं तथा उच्च उपभोक्ताओं में यह संचित ऊर्जा सबसे कम होती है। इस प्रकार ऊर्जा की मात्रा प्राथमिक उत्पादक से उच्च उपभोक्ता तक लगातार उत्तरोत्तर क्रम में कम होती जाती है। इसलिये ऊर्जा के स्तूप सदैव सीधे होते हैं (चित्र 18.7)।

खाद्य शृंखला एवं खाद्य जाल

(क) खाद्य शृंखला – ऐसे कार्बनिक पदार्थ जिनके ऑक्सीकरण से पौधे तथा जन्तु जैविक ऊर्जा प्राप्त करते हैं, खाद्य कहलाते है। हरे पौधे पर्णहरित, सौर विकिरण (प्रकाश) ऊर्जा, कार्बन डाईऑक्साइड आदि की सहायता से प्रकाश संश्लेषण क्रिया द्वारा अपना भोजन स्वयं बनाते हैं (स्वयंपोषी या प्राथमिक उत्पादक)। जिसका उपयोग प्राथमिक उपभोक्ता (शाकाहारी) करते हैं, प्राथमिक उपभोक्ताओं को द्वितीयक उपभोक्ता (माँसाहारी) एवं द्वितीय उपभोक्ता को तृतीयक श्रेणी के उपभोक्ता भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं। इस प्रकार पारिस्थितिक तंत्र में उत्पादक से उपभोक्ता श्रेणी के सभी जीव एक क्रम या शृंखला में व्यवस्थित

(i) घास स्थल में खाद्य शृंखला–

प्राथ. उत्पादक		उपभोक्ता		चरम उपभोक्ता		
P	→ C1	→	C2	→ C3	→	C4
घास	→ टिड्डा	→	मेंढ़क	→ साँप	→	मोर
प्राथ. उत्पादक	शाकाहारी	माँसाहारी		माँसाहारी		उच्च माँसाहारी
T1	T2	T3		T4		T5
पोष स्तर प्रथम	पोष स्तर द्वितीय	पोष स्तर तृतीय		पोष स्तर चतुर्थ		पोष स्तर पंचम

अपघटक C5(T6)

रहते है। इस शृंखला के प्रत्येक स्तर या कड़ी या जीव को पोषण स्तर या ऊर्जा स्तर कहते हैं। अन्योन्याश्रित जीवों की एक शृंखला को, जिसमें खाने और खाये जाने की पुनरावृति द्वारा ऊर्जा का प्रवाह होता है, खाद्य शृंखला कहलाती है। एक खाद्य शृंखला के विभिन्न पोष स्तरों को क्रमशः T_1, T_2 तथा T_3 (Trophic levels) द्वारा दर्शाया जाता है (चित्र 18.8)।

(i) **घास स्थल में खाद्य शृंखला**

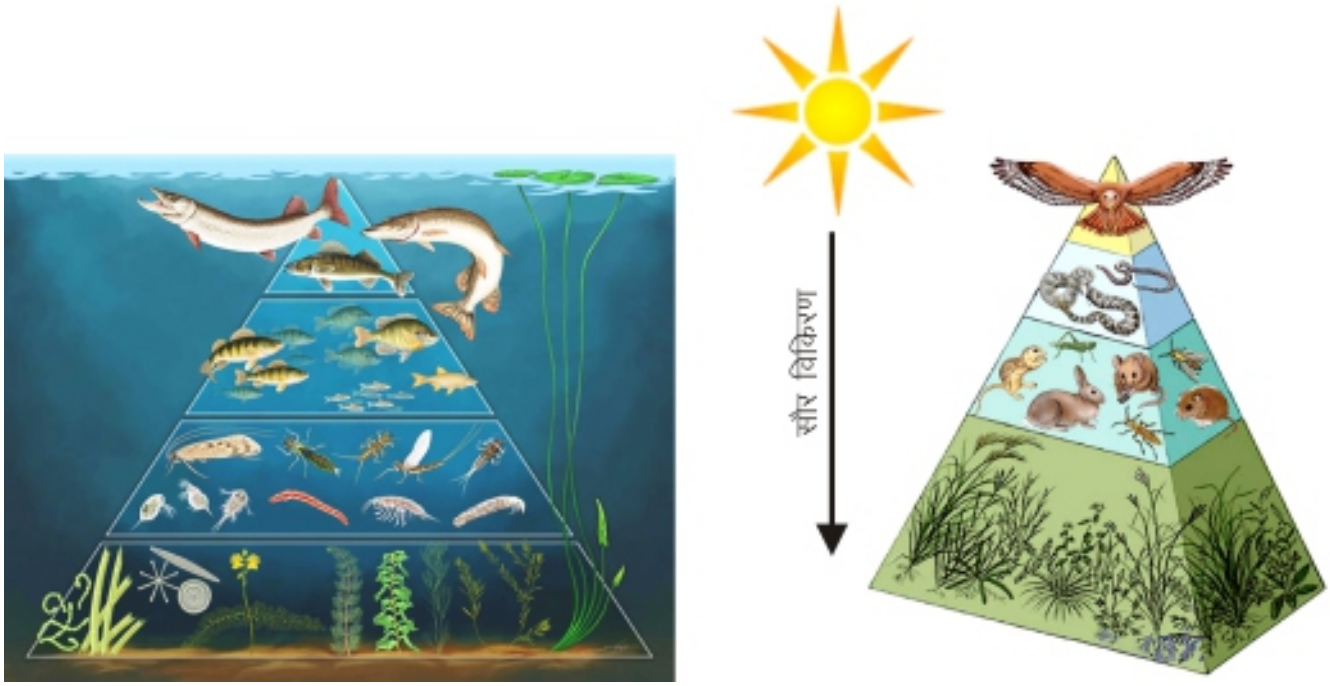

चित्र 18.7 : ऊर्जा का पारिस्थितिक स्तूप (सदैव सीधा)

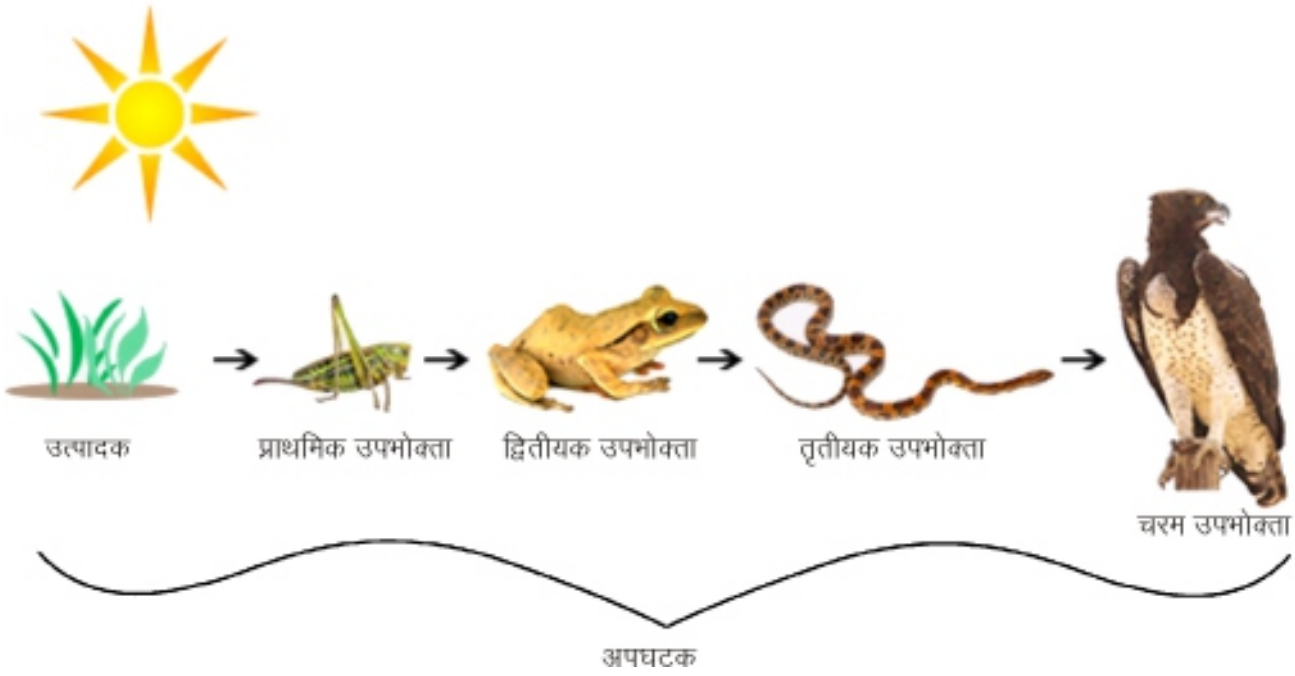

चित्र 18.8 : एक प्रारूपिक खाद्य शृंखला

(ii) **जलीय आवास में खाद्य शृंखला**

पादप प्लवक → जन्तु प्लवक → छोटी मछली → बड़ी मछली → मनुष्य

(iii) **वन पारिस्थितिक तंत्र में खाद्य शृंखला**

पौधे → हिरण → भेड़िया → शेर

प्रकृति में सामान्यतः एक खाद्य शृंखला में पांच–छः से अधिक कड़ियाँ या जीव नहीं होते हैं क्योंकि खाद्य ऊर्जा के एक पोष स्तर से दूसरे पोष स्तर में जाने पर लगभग 90 प्रतिशत ऊर्जा का ऊष्मा के रूप में अपव्यय (श्वसन क्रिया में) हो जाता है तथा चरम पोष स्तर को बहुत कम ऊर्जा उपलब्ध होती है।

खाद्य शृंखला के प्रकार – प्रकृति में तीन प्रकार की खाद्य शृंखलाएं होती हैं –

1. परभक्षी या शाकवती खाद्य शृंखला – इस प्रकार की खाद्य शृंखला प्रत्यक्ष रूप से सौर ऊर्जा पर आधारित होती हैं, जो हरे पादपों (प्राथमिक उत्पादक) से आरम्भ होकर अनुक्रम में माँसाहारी जन्तुओं से होती हुई चरम माँसाहारी जन्तुओं या उपभोक्ताओं पर समाप्त होती है। सामान्यतः यह छोटे जीवों से प्रारम्भ होकर बड़े जीवों पर समाप्त होती है। उदाहरण घास स्थलीय खाद्य श्रृंखला।

2. परजीवी खाद्य शृंखला – यह बड़े जन्तुओं (शाकाहारी) से प्रारम्भ होकर छोटे जीवों (परजीवी) पर समाप्त होती है। बड़े शाकाहारी जीवों को पोषिता या परपोष या आतिथेय कहते हैं। उदाहरण – जड़ें (पोषिता) → निमेटोड (परजीवी) → जीवाणु (परजीवी)।

3. अपरदी या मृतोपजीवी खाद्य शृंखला – यह आहार शृंखला मृत सड़े गले कार्बनिक पदार्थो से प्रारम्भ होती है और मृदा में स्थित अपरदभक्षी जीवों से होकर उन जीवों तक जाती हैं, जो अपरदहारी जीवों का भक्षण करते है। उदाहरण – अपरद् → केंचुआ → मेंढक → साँप → चील। इस प्रकार की खाद्य शृंखला वनों व घास स्थलीय पारितंत्रों में बहुत महत्व की हैं।

(ख) खाद्य जाल – वस्तुतः प्रकृति में उपरोक्त वर्णित सरल खाद्य शृंखलाएं नहीं पायी जाती है। अपितु विभिन्न आहार शृंखलाएं आपस में किसी न किसी खाद्य क्रम (पोष स्तर) से जुड़कर एक अत्यन्त जटिल खाद्य जाल का निर्माण करती है। इसका कारण यह है कि एक ही प्राणी कई प्रकार के प्राणियों को अपना भोजन बना सकता है। उदाहरणार्थ एक घास स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र में प्राथमिक उत्पादकों को टिड्डों एवं चूहों के अतिरिक्त खरगोश, गाय, बकरी या अन्य शाकाहारी द्वारा भी खाया जा सकता है। किसी प्रकार चूहों को सर्प तथा सर्पों को गिद्ध खाते हैं लेकिन इन्हें सर्पो व गिद्ध के अतिरिक्त अन्य जन्तुओं द्वारा भी खाया जा सकता है (चित्र 18.9)।

किसी भी पारितंत्र में खाद्य जाल जितना जटिल और विशाल होगा उतना ही वह पारिस्थितिक तंत्र स्थिरता एवं संतुलन लिये होगा क्योंकि इसमें उपभोक्ता के लिये कई प्रकार के जीव उपयोग के लिए उपलब्ध रहेंगे। किसी जीव के किसी

चित्र 18.9 : एक स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र में खाद्य जाल

कारणवश नष्ट हो जाने पर खाद्य जाल के स्थायित्व पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि खाद्य जाल में वैकल्पिक व्यवस्था होती है, जिससे उस जीव के स्थान की पूर्ति अन्य किसी जीव द्वारा हो जाती है तथा ऊर्जा का प्रवाह इन वैकल्पिक परिपथों से होने लगता है। इस प्रकार की व्यवस्था खाद्य शृंखलाओं में नहीं होती हैं। खाद्य जाल, समुदाय में जीवों के बहुदिशीय सम्बन्धों को प्रकट करता है। खाद्य जाल में ऊर्जा का प्रवाह एक दिशीय होते हुए भी अनेक वैकल्पिक परिपथों से होकर होता है।

पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा प्रवाह

पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा का प्रवेश, स्थानान्तरण, रूपान्तरण एवं वितरण ऊष्मागतिकी के दो मूल नियमों के अनुरूप होता है। कार्य करने की क्षमता को ऊर्जा कहते हैं। प्रत्येक जीव को अपनी जैविक क्रियाओं के लिये ऊर्जा की आवश्यकता होती है। किसी भी पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा का एक मात्र एवं अंतिम मुख्य स्त्रोत सूर्य है। पृथ्वी पर पहुंचने वाली कुल प्रकाश ऊर्जा का केवल एक प्रतिशत भाग प्रकाश संश्लेषण द्वारा खाद्य ऊर्जा या रासायनिक ऊर्जा में रूपान्तरित हो पाता है। वन वृक्षों में यह दक्षता 5 प्रतिशत तक हो सकती है। शेष ऊर्जा का उष्मा के रूप में ह्रास हो जाता है। पृथ्वी पर कुल प्रकाश संश्लेषण का लगभग 90 प्रतिशत भाग जलीय पौधों विशेषतः समुद्रीय डायटमों, शैवालों द्वारा सम्पन्न होता है और शेष भाग स्थलीय पौधों द्वारा होता है। इनमें भी वन वृक्ष सबसे अधिक प्रकाश संश्लेषण करते हैं। इसके बाद कृष्य पौधे तथा घास जातियाँ आती हैं। कोई भी जीव प्राप्त की गई ऊर्जा के औसतन 10 प्रतिशत से अधिक ऊर्जा अपने शरीर निर्माण में प्रयोग नहीं कर पाता है तथा शेष 90 प्रतिशत ऊर्जा का ऊष्मा के रूप में श्वसन आदि क्रियाओं में ह्रास हो जाता है अर्थात् खाद्य श्रृंखला में ऊर्जा के स्थानान्तरण में एक पोष स्तर पर लगभग 10 प्रतिशत ऊर्जा ही संग्रहित होती है। इसे पारिस्थितिक दशांक्ष का नियम कहते हैं। इस प्रकार यदि किसी स्थान पर सौर ऊर्जा की मात्रा 100 कैलोरी हो तो पादपों (प्राथमिक उत्पादक) को 10 कैलोरी, उन पादपों का चारण करके

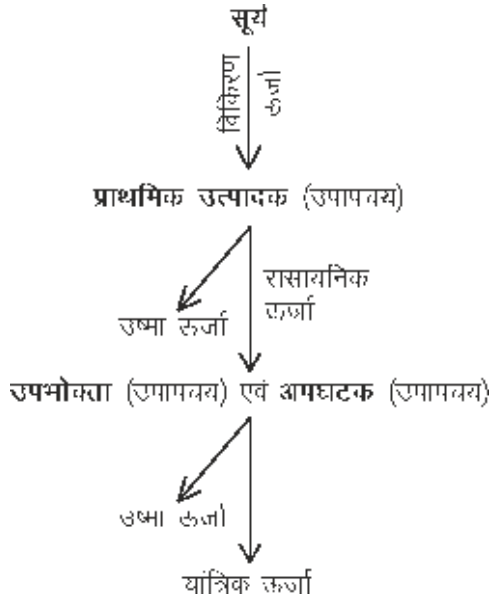

शाकभक्षी में केवल 1 कैलोरी और उस शाकाहारी (प्राथमिक उपभोक्ता) को खाकर माँसाहारी (द्वितीयक उपभोक्ता) में केवल 0.1 कैलोरी ऊर्जा संग्रहित होगी तथा उपघटक तक यह बहुत न्यून मात्रा में पहुँचेगी। वास्तव में ऊर्जा संकल्पना में ऊर्जा का एक पोष स्तर से दूसरे पोष स्तर में स्थानान्तरण एवं रूपान्तरण है।

ऊर्जा प्रवाह के प्रारूप – प्रत्येक पारिस्थितिक तंत्र में खाद्य शृंखलाओं के माध्यम से ऊर्जा प्रवाह के दो मुख्य आयाम ध्यान देने योग्य हैं –

1. ऊर्जा का एकदिशीय प्रवाह अर्थात् उत्पादक से विभिन्न श्रेणी के उपभोक्ताओं तक जिसे पुनः विपरीत दिशा में स्थानान्तरित नहीं किया जा सकता है।
2. पोषण स्तर के बढ़ते क्रम में ऊर्जा प्रवाह की मात्रा उत्तरोत्तर घटती जाती हैं। यह उत्पादक स्तर पर अधिकतम तथा चरम उपभोक्ता एवं अपघटक स्तर पर न्यूनतम होती है।

उत्पादक सौर ऊर्जा का आंशिक भाग (1–5 प्रतिशत) ही अवशोषित करते हैं। इस ऊर्जा का बड़ा भाग पौधों द्वारा श्वसन (ऊष्मा) में व्यय हो जाता है और बाकी ऊर्जा द्वारा इनके शरीर का निर्माण होता है। जब इन पौधों को अन्य शाकाहारी उपभोक्ता भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं, तो रासायनिक ऊर्जा का अधिकांश भाग पुनः श्वसन द्वारा ताप ऊर्जा (लगभग 30 प्रतिशत) में रूपान्तरित हो जाता है और कुछ अंश ही उस उपभोक्ता प्राणी के शरीर में रह जाता है। माँसाहारियों के श्वसन में सवांगीकृत ऊर्जा का करीब 60 प्रतिशत भाग खर्च हो जाता है। यह क्रिया सतत् आगे भी चलती रहती है और अन्ततः विभिन्न जीवों की मृत्यु के बाद उनके शरीर में बची ऊर्जा अपघटकों द्वारा व्यय करके

ऊष्मा ऊर्जा में बदलती जाती है, जो पौधे द्वारा पुनः उपयोग में नही ली जा सकती है। पारितंत्र में अनुपयोगी प्राथमिक उत्पादन, उपभोक्ताओं का अस्वाँगीकृत भाग (यथा मलमूत्र आदि) अपरद में परिवर्तित हो जाते हैं, जो कि अपघटकों के लिये ऊर्जा स्त्रोत का काम करते है। इस प्रकार पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा चक्र में भ्रमण नहीं करके केवल प्रवाहित होती है, जिसे ऊर्जा प्रवाह कहते है। यह सदैव ही एकदिशीय होती है।

ओड़म ने इसे ऊर्जा प्रवाह के एकदिशीय प्रारूप की सहायता से स्पष्ट किया। इसमें बॉक्स जैवभार या पोषण स्तर को तथा नलिकाऐं जैविक इकाईयों के मध्य (भीतर तथा बाहर) ऊर्जा प्रवाह को निरूपित करती है। इसमें उत्पादक पोष स्तर पर

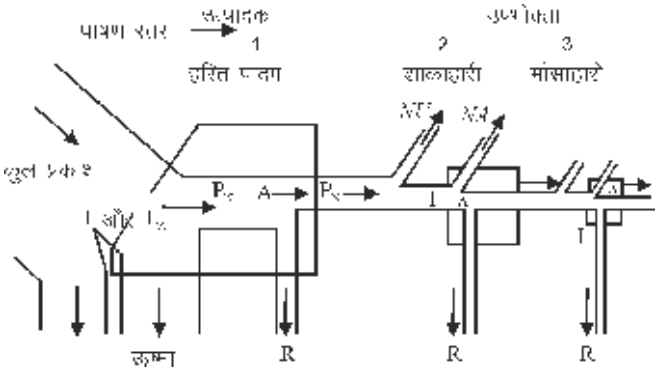

चित्र 18.10 : ऊर्जा प्रवाह का सामान्य एकदिशीय प्रारूप

उपलब्ध कुल ऊर्जा का केवल 0.001 प्रतिशत भाग ही चरम पोष पर उपयोग होता है। इसे ग्रेजिंग चैनल या चारण वाहिका भी कहा जाता है (चित्र 18.10)। इस तरह जितनी छोटी खाद्य श्रृंखला होगी, प्राप्य खाद्य ऊर्जा भी उतनी ही ज्यादा होगी, क्योंकि यहां ऊर्जा का अपव्यय या ह्रास कम होता है।

I = ऊर्जा–अन्तर्ग्रहण

L_A = पौधों द्वारा अवशोषित ऊर्जा

P_N = वास्तविक उत्पादन

P_G = सकल उत्पादन (या प्रकाश संश्लेषण)

R = श्वसन

NU = अप्रयुक्त ऊर्जा

NA = अस्वांगीकृत ऊर्जा

A = स्वांगीकृत ऊर्जा

ओडम 1968 ने एक अन्य मॉडल प्रस्तुत किया जिसे सार्वत्रिक प्रारूप कहा जाता है, जो किसी भी जीवित घटक पौधे, प्राणी, सूक्ष्म जीवी या व्यष्टि जनसंख्या या पोष समूह के लिये प्रयोज्य है। इस प्रकार का प्रारूप खाद्य श्रृंखला को चित्रित कर सकता है (चित्र 18.11)। ओड़म (1983) ने वाई आकारीय या दो चैनल

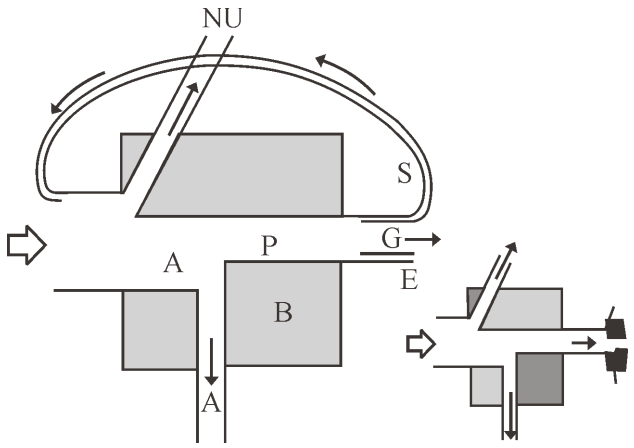

चित्र 18.11 : ऊर्जा प्रवाह का सार्वत्रिक प्रारूप

ऊर्जा प्रवाह का सामान्यीकृत प्रारूप दिया, जो स्थलीय तथा जलीय दोनों पारितंत्रों के लिये प्रयोज्य है। प्रत्येक वाई आकार के मॉडल में एक भुजा शाकवर्ती खाद्य श्रृंखला को तथा दूसरी अन्य अपरदी खाद्य श्रृंखला को निरूपित करती है (चित्र 18.12)। ऊर्जा प्रवाह की यह अन्य धारा अपरद धारा या वाहिका कहलाती है। इस प्रकार ऊर्जा प्रवाह की यह धारा या वाहिका सीधी न होकर वाई के आकार की होती है। इस प्रकार से सूर्य से प्रारम्भ होकर हरे पादपों के द्वारा खाद्य श्रृंखला में विभिन्न पोष स्तरों तथा अपघटकों में ऊर्जा का अविच्छिन्न प्रवाह होता रहता है।

I = अन्तर्ग्रहित ऊर्जा या निवेश, A = स्वाँगीकृत ऊर्जा

NU = अप्रयुक्त ऊर्जा P = उत्पादन

R = श्वसन B = जैव भार

G = वृद्धि S = संचित ऊर्जा

E = उत्सर्जी ऊर्जा

पारिस्थितिक दक्षता

प्रत्येक पारिस्थितिक तंत्र में जीव अपना भोजन प्राप्त करता है तथा आहार को जैवभार में परिवर्तित कर दूसरे उच्च पोष स्तर को उपलब्ध कराता है। इनकी इस दक्षता को दर्शाने के लिये अनेक अनुपातों का प्रयोग किया जाता है। खाद्य श्रृंखला के विभिन्न पोष स्तरों के बीच प्रवाहित होने वाली ऊर्जा की मात्रा के

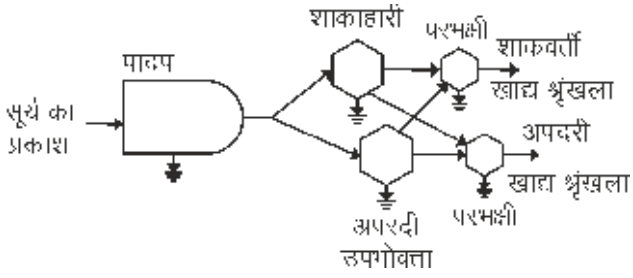

चित्र 18.12 : पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा प्रवाह का Y आकृति प्रारूप

अनुपात को यदि प्रतिशत में व्यक्त किया जावे तो इसे पारिस्थितिक दक्षता कहते हैं। किसी एक पोष स्तर में और भिन्न पोष स्तर के मध्य विभिन्न पारिस्थितिक दक्षताएं पायी जाती है। ऊर्जा की मात्रा को सामान्यतः किलो–कैलोरी प्रति वर्गमीटर प्रतिवर्ष इकाई में नापा जाता है। उत्पादक स्तर पर प्रकाश संश्लेषी दक्षता तथा वास्तविक उत्पादन दक्षता महत्वपूर्ण होती है। (एक पोष स्तर की दक्षता)। उत्पादक द्वारा सौर विकिरण ऊर्जा को उपयोग करने की दक्षता का मापन प्रकाश संश्लेषी दक्षता द्वारा किया जाता है। विभिन्न पादप प्रजातियों की वास्तविक उत्पादन दक्षता भिन्न–भिन्न होती है जैसे बड़े वृक्षों में स्तम्भ तथा टहनियों के रूप में प्रकाश संश्लेषण रहित जैवभार होता है। अतः उनकी वास्तविक उत्पादन दक्षता शैवालों की तुलना में कम होती है। उपभोक्ता स्तर (शाकाहारी एवं माँसाहारी जीवों) पर खाद्य ऊर्जा को अन्तर्ग्रहण करने की क्षमता विभिन्न जातियों में अलग–अलग होती है। उपभोक्ता के लिये स्वांगीकरण दक्षता (एक पोषक स्तर पर) तथा पारिस्थितिक दक्षता (दो पोषक स्तरों के मध्य) महत्वपूर्ण है। प्राणियों की स्वांगीकरण दक्षता और पारिस्थितिक दक्षता 10 से 50 प्रतिशत हो सकती है और यदि अधिक ऊर्जा युक्त भोजन ग्रहण किया जावे तो यही क्षमता अधिक ऊपर तक पहुंच सकती है। छोटे जीवों में प्रायः स्वांगीकृत ऊर्जा का बड़ा भाग वृद्धि के काम आता है और बड़े जीवों में (जैसे वयस्क मनुष्य, पशु, पेड़ पौधे आदि) स्वांगीकृत ऊर्जा का अधिकांश भाग श्वसन में व्यय हो जाता है। विभिन्न दक्षताओं की संगणना निम्नानुसार की जाती हैं।

(A) एक ही पोषण रीति की दक्षताएं

$$\text{प्रकाश संश्लेषी दक्षता (उत्पादन स्तर)} = \frac{\text{सकल प्राथमिक उत्पादकता}}{\text{आपतित सम्पूर्ण सौर विकिरण}} \times 100$$

$$\text{वास्तविक उत्पादन दक्षता} = \frac{\text{नेट या शुद्ध प्राथमिक उत्पादकता}}{\text{सकल प्राथमिक उत्पादकता}} \times 100$$

$$\text{स्वांगीकरण दक्षता (उपभोक्ता स्तर)} = \frac{\text{स्वांगीकृत खाद्य ऊर्जा}}{\text{अन्तर्ग्रहित आहार ऊर्जा}} \times 100$$

(B) दो पोषण स्तरों के बीच दक्षताएं

$$\text{पारिस्थितिक दक्षता या पोषण रीति उत्पादन दक्षता} = \frac{\text{पोष स्तर पर जैवभार उत्पाद में ऊर्जा}}{\text{पूर्व पोषण स्तर पर जैवभार उत्पादन में ऊर्जा}} \times 100$$

$$\text{पोषण स्तर स्वांगीकरण दक्षता} = \frac{\text{पोषण स्तर पर स्वांगीकृत ऊर्जा}}{\text{निम्न पोषण स्तर पर स्वांगीकृत ऊर्जा}} \times 100$$

उत्पादकता (Productivity)

जीवों की जीवन क्रियाओं के परिणामस्वरूप निर्मित कार्बनिक पदार्थों को जैविक उत्पादन कहते हैं। हरे पौधों द्वारा उत्पादित पदार्थों की कुल मात्रा को प्राथमिक उत्पादन कहा जाता है। उपभोक्ता इस प्राथमिक उत्पादन का उपयोग कर कुछ अन्य प्रकार के कार्बनिक पदार्थों का पुनर्निर्माण करते हैं, इसे उपभोक्ता स्तर का उत्पादन या द्वितीयक (गौण) उत्पादन कहते हैं। प्रति इकाई समय में उत्पादन की दर को उत्पादकता कहते है। दूसरे शब्दों में जैवभार उत्पादकता की दर उत्पादकता कहलाती है।

पारिस्थितिक तंत्र उत्पादकता दो प्रकार की होती है – (1) प्राथमिक उत्पादकता एवं (2) द्वितीयक उत्पादकता। प्राथमिक उत्पादक (अर्थात हरे पौधे आदि) जिस दर से सौर ऊर्जा को प्रकाश संश्लेषण क्रिया द्वारा कार्बनिक पदार्थो (भोजन) के रूप में संग्रहित करते है, प्राथमिक उत्पादकता कहलाती है। इसे प्रति इकाई समय में प्रति इकाई क्षेत्र में उत्पादित जैवभार या संचित ऊर्जा के रूप में व्यक्त करते है। सामान्यतया इसे ग्राम प्रति मीटर^2 प्रति वर्ष या कि.कैलोरी प्रति मी^{2} प्रति वर्ष के रूप में व्यक्त किया जाता है। प्राथमिक उत्पादकता दो प्रकार की होती है – (1) सकल तथा (2) नेट या वास्तविक या शुद्ध। प्राथमिक उत्पादकों द्वारा ऊर्जा के पूर्ण अवशोषण की दर को या कार्बनिक पदार्थो यथा जैवभार के कुल उत्पादन की दर को सकल प्राथमिक उत्पादकता (GPP) कहते है तथा उत्पादकों की श्वसन क्रिया (R) के बाद बचे हुए जैव भार या ऊर्जा की दर को वास्तविक या नेट प्राथमिक उत्पादकता (NPP) कहते हैं अर्थात्

नेट प्राथमिक उत्पादकता (NPP) = सकल प्राथमिक उत्पादकता (GPP) – श्वसन दर (R)

जीवित पौधों या प्राणियों के शरीर में कार्बनिक पदार्थो की कुल मात्रा जैवभार होती है, तथा मृत भागों या जीवों को कूड़ा–करकट (Litter) कहा जाता है। किसी जैव समुदाय या पादप समुदाय में किसी एक समय पर उपस्थित जैव भार को स्थित शस्य कहते है। वास्तविक प्राथमिक उत्पादकता पौधों में जैव भार के रूप में संचित रहती है, जो शाकाहारियों तथा अपघटकों के लिये आहार के रूप में काम आती है। उपभोक्ता स्तर पर जिस दर से खाद्य ऊर्जा का उपापचय या स्वाँगीकरण होता है, द्वितीयक (गौण) उत्पादकता कहलाती है, जिसका उपयोग उपभोक्ता जैवभार के लिये करते है। इसे भी सकल या वास्तविक या नेट द्वितीयक उत्पादकता के रूप में दर्शाते है। प्राथमिक उपभोक्ता (शाकाहारी) अपनी श्वसन क्रिया में भोज्य ऊर्जा के कुछ अंश का उपयोग कर लेते हैं, शेष भाग नेट या वास्तविक द्वितीय उत्पादकता कहलाती है। प्राथमिक उत्पादकता, प्रकाश संश्लेषण तथा श्वसन को प्रभावित करने वाले पर्यावरणीय कारकों से सर्वाधिक प्रभावित होती है, जैसे विकिरण, तापमान, प्रकाश, मृदा की आर्द्रता आदि। जलीय पारिस्थितिक तंत्र में

उत्पादकता प्रकाश के कारण सीमित रहती है। महासागरों (गहरे) में पोषक तत्व (जैसे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस आदि) उत्पादकता को सीमित करते है।

अपघटन (Decomposition)

पारिस्थितिक तंत्र में खनिज तत्वों के परिसंचरण के लिये जीवों में संग्रहित जटिल कार्बनिक पदार्थो (मृत) का अपघटन क्रिया द्वारा कार्बन डाइऑक्साइड, जल तथा सरल अकार्बनिक पदार्थो में टूटना आवश्यक है। ये कार्बनिक पदार्थ जो कि उत्पादन प्रक्रिया को चलाये रखने के लिये आवश्यक है, अपघटन द्वारा पुनर्निवेशित होते हैं। इस प्रक्रिया में कवक, जीवाणुओं, अन्य सूक्ष्म जीवों के अतिरिक्त छोटे प्राणियों जैसे निमेटोड, कीट, केंचुएं आदि का मुख्य योगदान रहता है। पौधों तथा जन्तुओं के मृत अवशेषों को अपरद कहते हैं। मृत पौधों तथा प्राणियों के अवशेष (मल मूत्र आदि) जो भू सतह पर पाये जाते हैं, उन्हें सतही अपरद कहते है। मृत जड़ों तथा उनसे जुड़े रोगाणुओं को भूमिगत अपरद कहते हैं।

अपघटन की प्रक्रिया में निम्नलिखित क्रियाएं सम्मिलित हैं–

1. अपरद का भौतिक खिण्डन अपरदहारी जीवों द्वारा होता है।
2. निक्षालन में मृदा से रिसता जल घुलनशील पदार्थो जैसे शर्करा, पोषक तत्वों को अपरद से हटा देता है।
3. जीवाणुओं तथा कवकों द्वारा निमुक्त प्रकिण्वों द्वारा अपचयन क्रिया में इनका अकार्बनिक पदार्थों में रूपान्तरण होता है। प्रकृति में ये सभी क्रियाएं साथ–साथ चलती रहती है। ह्यूमस निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन मृदीय करण के अन्तर्गत किया जा चुका है। अपघटन की क्रिया से मृदा में ह्यूमीफिकेशन (ह्यूमस का निर्माण) तथा खनिजीकरण होता है। ह्यूमस से सूक्ष्म जीवों के जैवभार में वृद्धि होती है तथा भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती है।

कुछ विशेष परिस्थितियों में मृदा के पोषक तत्व सूक्ष्मजीवों के जैवभार से बद्ध रहते है, जो दूसरे जीवों को उनकी मृत्यु तक अप्राप्य होते हैं, पोषक निश्चलता कहलाती है। इसी प्रकार निश्चलीभवन प्रक्रिया पारिस्थितिक तंत्र में पोषक तत्वों के संरक्षण

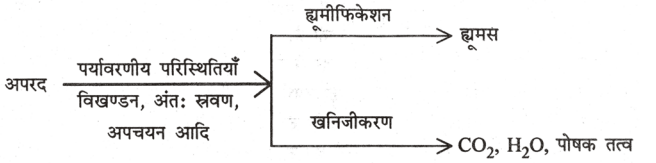

अपरदन के अपघटन से संलग्न प्रक्रियाओं का प्रवाही चित्र

में सहायक होती है। दूसरे शब्दों में सूक्ष्म पोषक तत्वों का समावेशन पोषक निश्चलता है।

अपघटन की प्रक्रिया प्रमुखतः जलवायवीय कारकों तथा अपरद के रासायनिक गुणों द्वारा प्रभावित रहती है। आर्द्र जलवायु तथा तापमान की अधिकता अपघटन की प्रक्रिया को बढ़ा देते हैं। कम तापमान में यह प्रक्रिया बहुत धीमी हो जाती है।

जैव–भू–रासायनिक चक्र

हरे पौधे (प्राथ उत्पादक) अपनी वृद्धि के लिये सौर ऊर्जा, जल, कार्बनडाईऑक्साइड के अतिरिक्त मृदा से अनेक खनिज तत्व भी ग्रहण करते हैं, जो खाद्य श्रृंखलाओं के विभिन्न पोषण स्तरों के जीवों में से होते हुए, जीवों की मृत्यु के पश्चात् अपघटन द्वारा पुनः मृदा में लौट आते हैं तथा पुनः हरे पौधों द्वारा प्रयुक्त हो जाते हैं। जैविक समुदाय का प्रत्येक पोषक अणु अजैविक वातावरण से प्रविष्ट होता है तथा पुनः वातावरण को लौट जाता है। इस प्रकार पोषक तत्वों का बारम्बार प्रयोग होता है अर्थात् इनका पुनःचक्रण होता है। इस प्रकार ऊर्जा का एकदिशीय प्रवाह तथा पोषक पदार्थो का परिसंचरण पारिस्थितिकी के दो मूल सिद्धान्त है। खनिज अर्थात् रासायनिक तत्वों के जीवों एवं भूमि के माध्यमों से होकर चक्रीय भ्रमण के कारण ही इस क्रिया को जैव भू–रासायनिक चक्रण या पदार्थो का चक्रीकरण कहा जाता है। वस्तुतः कुछ तत्व वायुमण्डल से होकर भी चक्रीय भ्रमण करते हैं, जैसे कार्बन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन आदि। वास्तव में इन तत्वों के परिसंचरण में वायुमण्डल, स्थलमण्डल व जलमण्डल तथा जीवों का संघटित योगदान होता है। खनिज तत्वों के परिसंचरण को उनके भ्रमण पथ के अनुसार दो प्रकारों में बाँटा जाता है–

(अ) गैसीय प्रकार – इन तत्वों का मुख्य स्त्रोत तथा संचयक कुण्ड या भण्डार वायुमण्डल होता है। उदाहरण – कार्बन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, गंधक (सल्फर) आदि।

(ब) स्थलीय या अवसादी प्रकार – इन तत्वों का दूसरा प्रमुख भण्डार या स्त्रोत भूमि स्वयं है। ये तत्व भूमि से पौधों द्वारा ग्रहण किये जाते है। उदाहरण – फॉस्फोरस, कैल्सियम, मैग्निशियम, सोडियम आदि। कुछ चक्रों का संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है–

1. नाइट्रोजन चक्र – सभी जीवों को पोषण में नाइट्रोजन का विशेष महत्व है। यद्यपि वायुमण्डल में लगभग 78 प्रतिशत नाइट्रोजन होते हुए भी गैसीय रूप में यह पौधों के लिए सर्वथा अनुपयोगी है, जब तक यह गैस नाइट्रोजन यौगिकीकरण द्वारा अमोनिया और नाइट्रेटों में परिवर्तित नहीं होती, पौधे इसे सीधे जड़ों द्वारा अवशोषित नहीं कर सकते है। प्रायः स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र में नाइट्रोजन यौगिकीकरण सहजीवी जीवाणुओं द्वारा होता है, जबकि जलीय पारितंत्र में यह बहुतायत में स्वतंत्रजीवी जीवाणुओं द्वारा होता है (चित्र 18.13)।

2. फॉस्फोरस चक्र – फॉस्फोरस विभिन्न शैलों के अपरदन द्वारा मृदा में एकत्र होता है। जहाँ से अकार्बनिक फॉस्फेट के रूप

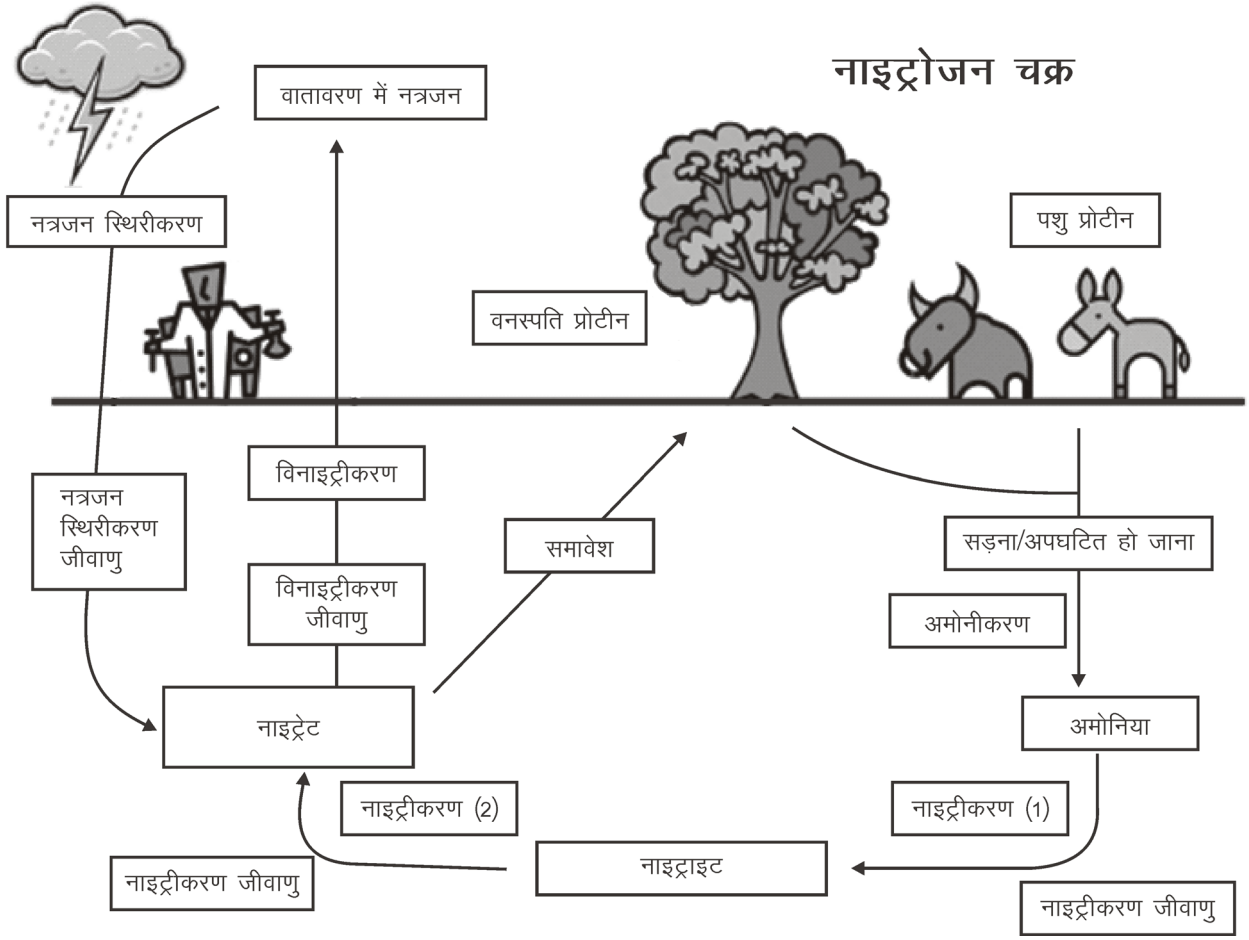

चित्र 18.13 : नाइट्रोजन चक्र

में पौधों द्वारा अवशोषित होता है। विभिन्न पोष स्तर के पौधों व प्राणियों के शरीर में उपापचयित होकर इन जीवों की मृत्योपरान्त सूक्ष्म जीवों (फॉस्फेटीकरण जीवाणुओं) की अपघटन और खनिजीकरण की क्रियाओं द्वारा कार्बनिक से अकार्बनिक फॉस्फेट में परिवर्तित होकर पुनः मृदा में पौधों के लिए प्राप्त हो जाते है। उच्च स्तरीय पादपों में फॉस्फोरस का अवशोषण, कवकमूल की उपस्थिति में तीव्रता से होता है। ये तत्व किसी भी समय गैसीय अवस्था में वायुमण्डल में नहीं पाये जाते है। जलीय आवासों के प्रदूषण में इनका प्रमुख योगदान है। यह जीवों की कोशिकीय ऊर्जा सम्बन्धी क्रियाओं में एटीपी के रूप में अत्यन्त महत्वपूर्ण है तथा जीवद्रव्य का एक आवश्यक अंश है। यह हड्डी तथा दाँतों का प्रमुख अवयव है। फॉस्फोरस, कैल्शियम इत्यादि कुछ अन्य तत्वों की बड़ी मात्राएं जल के साथ समुद्र के गर्भ में पहुंचती रहती है। वहां पर शनैः शनैः चट्टानों में रूपान्तरित हो जाती है तथा बहुत लम्बे समय तक चक्रीकरण के इस क्रम से अलग हो जाती है। पृथ्वी की भूगर्भीय उथल–पुथल के कारण जब ये चट्टानें, जीवाश्म तथा ज्वालामुखी खुल जाते हैं, तो उनमें उपस्थित फॉस्फोरस अपरदन द्वारा पुनः मृदा में मिलकर पौधों को उपलब्ध

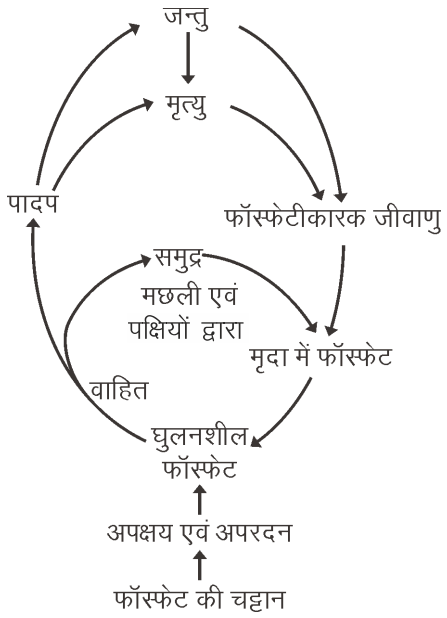

चित्र 18.14 : फॉस्फोरस चक्र

हो जाते है (चित्र 18.14)।

3. सल्फर या गंधक चक्र – गंधक का भण्डार मुख्यतः ठोस रूप में पृथ्वी के अंदर रहता है तथापि यह पौधों को ऑक्सीकृत (सल्फेट, सल्फर डाई ऑक्साइड) या अपचयित (हाइड्रोजन सल्फाइड) के रूप में ही प्राप्त होता है। सल्फर अनेक प्रकार के प्रोटीन्स, विटामिन्स तथा एन्जाइमों के निर्माण में प्रयुक्त होता है। पादप प्रायः इसे मृदा से सल्फेट आयन के रूप में अवशोषित करते हैं, जहाँ से यह विभिन्न पोषस्तर के प्राणियों की उपापचयन क्रियाओं से होकर गुजरता है।

उपभोक्ता तथा उत्पादक जीवों की मृत्यु पश्चात् अनॉक्सी जीवाणु जैसे डिसल्फोविब्रो, एरोबैक्टर तथा ऑक्सीकारक जीवाणु, थायोबेसिलस आदि शरीर के कार्बनिक सल्फर युक्त यौगिकों को हाइड्रोजन सल्फाइड में बदल देते है। इस हाइड्रोजन सल्फाइड का जीवाणुओं द्वारा ऑक्सीकरण होता है, जिसके फलस्वरूप पुनः प्राप्त हो जाता है। अपघटन के इस कार्य में जीवाणुओं के अतिरिक्त कवक जैसे ऐस्परजिलस, न्यूरोस्पोरा आदि का विशेष योगदान होता है। इसके अतिरिक्त कुछ प्रकाश संश्लेषी जीवाणु जैसे हरे तथा बैंगनी सल्फर जीवाणु प्रकाश संश्लेषण की क्रियाओं में हाइड्रोजन सल्फाइड का उपयोग करते है, जिसके कारण सल्फर विमुक्त हो जाती है। यह सल्फर, सल्फेट आयन के रूप में मृदा में रहती है। जहाँ से पौधे इसका पुनः अवशोषण करते हैं

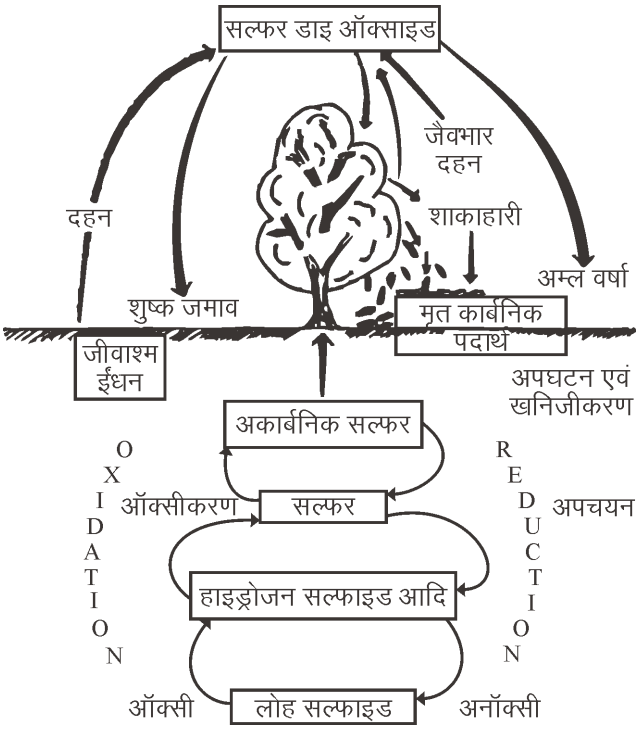

चित्र 18.15 : सल्फर चक्र

(चित्र 18.15)।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. इकोसिस्टम (पारिस्थितिक तंत्र) का सर्वप्रथम प्रयोग सर आर्थर टेन्सले ने 1935 में किया था।
2. वातावरण के जैविक एवं अजैविक कारकों के समाकलन के फलस्वरूप निर्मित तंत्र, पारिस्थितिक तंत्र कहलाता है।
3. इकोसिस्टम शब्द प्रकृति के समतुल्य है क्योंकि इसमें समाकलित वातावरण के जैविक तथा अजैविक कारक सदा परस्पर क्रिया करते रहते है।
4. सम्पूर्ण जैवमण्डल अर्थात् पृथ्वी को एक पारिस्थितिक तंत्र माना गया है, कोले (1958) ने इसके लिये पारिस्थितिक मण्डल शब्द का प्रयोग किया।
5. जैविक घटक में प्राथमिक उत्पादक (हरे पादप), उपभोक्ता तथा अपघटक होते है। वृहद् उपभोक्ता तीन प्रकार के होते हैं – प्राथमिक उपभोक्ता, द्वितीयक उपभोक्ता एवं तृतीय उपभोक्ता।
6. अजैविक घटक में अकार्बनिक पदार्थ, कार्बनिक पदार्थ तथा जलवायुवीय कारक समाहित होते है।
7. उत्तरोत्तर खाद्य या पोषण रीतियों के परस्पर आनुपातिक संबंधों के आलेखी निरूपण को पारिस्थितिक स्तूप कहते हैं, ये तीन प्रकार के होते हैं – जीव संख्या के स्तूप, जैवभार के स्तूप एवं ऊर्जा के स्तूप।
8. खाद्य जाल में ऊर्जा प्रवाह के वैकल्पिक परिपथ पाये जाते हैं।
9. ऊर्जा का प्रवाह सदैव एकदिशीय होता है तथा एक पोष स्तर से दूसरे पोष स्तर में ऊर्जा के स्थानान्तरण में लगभग 90 प्रतिशत ऊर्जा का ह्रास हो जाता है।
10. खनिज या रासायनिक तत्वों के जीवों एवं भूमि के माध्यमों से होकर चक्रीय भ्रमण को जैव–भू–रासायनिक चक्रण कहते हैं।
11. उत्पादकता तथा अपघटन पारितंत्र की दो प्रमुख क्रियायें हैं जो इसे स्थायित्व तथा संतुलन प्रदान करती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. इनमें से कौनसा जल अलवणीय नहीं है–
   (अ) झरना (ब) पोखर
   (स) नदी (द) ज्वारनद्मुख
2. इनमें से कौनसा कृत्रिम पारिस्थितिकी तंत्र है–
   (अ) मरूस्थल (ब) तालाब
   (स) खेत (द) उपरोक्त सभी

3. जीवों की संख्या के स्तूप में इनमें से कौनसा आरेखी निरूपण सीधे स्तूप को दर्शाता है–
   (अ) घासस्थल (ब) वन
   (स) खेत (द) उपरोक्त सभी
4. उत्पादक पोष स्तर पर उपलब्ध कुल ऊर्जा का कितने प्रतिशत भाग चरम पोष पर उपयोग होता है–
   (अ) 0.001% (ब) 0.002%
   (स) 0.003% (द) 0.005%
5. इनमें से कौनसा स्तूप सदैव सीधा होता है–
   (अ) जीवों की संख्या का स्तूप
   (ब) जैवभार का स्तूप
   (स) ऊर्जा का स्तूप
   (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. पारिस्थितिक तंत्र को परिभाषित कीजिये।
2. पारिस्थितिक तंत्र के घटकों को संक्षिप्त में समझाइये।
3. जैवभार के स्तूप को परिभाषित कीजिये।
4. खाद्य शृंखला को समझाइये।
5. पारिस्थितिक दक्षता को समझाइये।
6. सकल एवं वास्तविक उत्पादकता में अन्तर बताइये।
7. जैव–भू–रासायनिक चक्रण को परिभाषित कीजिये।
8. जैविक उत्पादकता को समझाइये।
9. पारिस्थितिक तंत्र में खाद्य शृंखलाओं के माध्यम से ऊर्जा प्रवाह को समझाइये।
10. खाद्य शृंखला एवं खाद्य जाल में अन्तर बताइये।
11. पारितंत्र की कार्यात्मक स्वरूप को स्पष्ट कीजिये।
12. विषमपोषी उपभोक्ता को परिभाषित कीजिये।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. पारिस्थितिक तंत्र के घटकों का वर्णन कीजिये।
2. पारिस्थितिक स्तूप को परिभाषित कीजिये तथा इसके प्रकार समझाइये।
3. खाद्य शृंखला के प्रकारों को समझाइये।
4. पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा प्रवाह का वर्णन कीजिये।
5. पारिस्थितिक दक्षता को विस्तार से समझाइये।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. पारिस्थितिक तंत्र में उत्पादकता एवं अपघटन की क्रियाओं को विस्तार से समझाइये।
2. जैव भू–रासायनिक चक्र को विस्तार से समझाइये।

उत्तरमाला: 1 (द) 2 (स) 3 (द) 4 (अ) 5 (स)

अध्याय – 19

सामाजिक वानिकी

(Social Forestry)

सामाजिक वानिकी से अर्थ खाली पड़े स्थानों पर बहुपयोगी वृक्ष लगाने से है जिससे पर्यावरण की सुरक्षा के साथ–साथ क्षेत्रों में रोजगार की वृद्धि हो सके। राष्ट्रीय कृषि आयोग द्वारा 1976 में ईंधन, चारा लकड़ी और छोटे–मोटे वन उत्पादों की पूर्ति करने वाले पेड़ लगाने के कार्यक्रम के लिए सामाजिक वानिकी शब्द दिया गया था। यद्यपि देश के सभी हिस्सों में सामाजिक वानिकी कार्यक्रम चालू करने के लिए कृषि मंत्रालय ने एक बड़ी योजना बनाई थी।

वन सम्पदा देश की ऐसी निधि है जो पुनरोपयोगी संसाधन उपलब्ध कराकर देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देती है।

सामाजिक वानिकी एक ऐसा यंत्र है, जिससे एक साथ कई समस्याओं से मुक्ति पाई जा सकती है। सामाजिक वानिकी से जुड़े कार्यक्रमों को प्रभावी ढंग से लागू कर दिया जाए, तो ग्रामीणों की मूलभूत जरूरतों की पूर्ति तो होगी ही साथ ही साथ वातावरणीय प्रदूषण, आंधी–तूफान, बाढ़, सूखा तथा मृदा अपरदन से भी निजात पाई जा सकती है तथा वन्य जीवों की सुरक्षा हेतु प्राकृतिक आवास भी उपलब्ध हो सकते हैं।

औद्योगिक एवं सूचना प्रौद्योगिकी के विस्तार के बावजूद आम नागरिकों की समस्यायें कम नहीं हुई है। कृषि के क्षेत्र में कहीं सूखा तो कहीं बाढ़ की समस्यायें पहले से अधिक विकराल रूप धारण करने लगी है। मौसम चक्र में परिवर्तन के कारण बढ़ती गर्मी, कम बरसात, अलनीनों प्रभाव, प्रदूषित पर्यावरण, धरती के तापमान में वृद्धि, अम्लीय वर्षा, ओजोन परत में बढ़ता छिद्र तथा बिजली–पानी के संकट ने देश के सामने विकट चुनौतियाँ उत्पन्न की है। प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन से पारिस्थितिकीय सन्तुलन बिगड़ गया है। इस परिस्थिति में इन समस्त समस्याओं के समाधान स्वरूप सामाजिक वानिकी एक महत्वपूर्ण विकल्प साबित हो सकती है, जिसे प्रोत्साहित कर सरकार स्थानीय स्तर से पारिस्थितिकीय सन्तुलन की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य कर सकती है।

सामाजिक वानिकी समाज, पंचायत एवं वन विभाग का ऐसा समन्वय है, जो रक्षित वनों पर समाज के भार को कम करता है तथा मानव शक्ति को वनोत्पादन की ओर प्रोत्साहित करता है। इस परिप्रेक्ष्य में अब जबकि समाज के सर्वांगीण विकास की महती जिम्मेदारी पंचायती राज व्यवस्था के मजबूत कन्धों पर दे दी गई है, पंचायत अपने क्षेत्र के लोगों को जागरूक कर सामाजिक वानिकी को प्रोत्साहित कर सकती है।

भारत में सामाजिक वानिकी को सर्वप्रथम छठी पंचवर्षीय योजना के दौरान नये बीस सूत्रीय कार्यक्रम के सूत्र संख्या–12 के तहत अपनाया गया। इसके अन्तर्गत तीन प्रमुख कार्यक्रम है–

1. बंजर भूमि में मिश्रित बागान लगाना।
2. विनिष्ट वनों में पुनः वनारोपण करना।
3. सुरक्षा पेटियाँ बनाना।

सामाजिक वानिकी के प्रमुख उद्देश्य हैं –

1. नवीकरण द्वारा ईंधन प्राप्त कर गोबर का प्रयोग ईंधन के बजाय खाद के रूप में करना, साथ ही रक्षित वनों में पशुचारण न हो इसके लिए ऐसी वनस्पतियों का विकास करना जिनका पशुओं के चारे के रूप में उपयोग किया जा सके।
2. भारत में इमारती लकड़ियों को प्राप्त करने के उद्देश्य से वनों की अन्धाधुन्ध कटाई की गई है, जिससे पर्यावरण पर खतरा उत्पन्न हुआ है। अतः सामाजिक वानिकी के द्वारा ऐसे पौधों का विकास करना है जिससे कीमती एवं उपयोगी लकड़ियाँ प्राप्त की जा सके तथा पारिस्थितिकी तन्त्र का जैव–विविधता द्वारा संरक्षण भी प्रदान किया जा सके।

3. देश के खाद्य संसाधनों में वृद्धि हो सके इसके लिए भूमि संरक्षण तथा खेतों की उर्वरता को बढ़ाकर भोज्य सामग्री उपलब्ध करना।
4. चूंकि हरियाली का जीवन से गहरा सम्बन्ध है इसलिए सार्वजनिक स्थलों पर सजावटी एवं छायादार वृक्ष को विकसित करना।

सामाजिक वानिकी ऐसी योजना है जिससे चौतरफा पर्यावरण की सुरक्षा हो सकती है। एक ओर तो इससे ईंधन, चारा एवं उपयोगी लकड़ियाँ प्राप्त होगी दूसरी ओर बढ़ती जनसंख्या का पर्यावरण पर भार भी कम हो सकेगा।

वस्तुतः प्रत्येक वर्ष लगभग 23.5 करोड़ घन मीटर ईंधन की लकड़ी वनों से काटी जाती है जबकि वनों की स्थाई क्षमता करीब 4.8 करोड़ घन मीटर है जबकि उत्पादन क्षमता 1.2 करोड घन मीटर है। अतः अब समय आ गया है कि सामाजिक वानिकी को थोड़ा और परिमार्जित कर सरकार बेकार की पड़ी भूमि पर इसे प्रतिबद्ध होकर विकसित करे। अन्यथा पर्यावरण के संकट भयावह परिणाम दे सकते हैं।

गाँवों में ईंधन के लिए वनों से लकड़ी काटने पर प्रतिबन्ध हो। सरकारी आंकड़े बताते हैं कि अंग्रेजों के आने से पूर्व यहाँ लगभग 40 प्रतिशत भूमि पर जंगल थे, जबकि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद यह आधे (19 प्रतिशत) से भी कम रह गए। वर्ष 1989–2003 के बीच भारत में कुल भूमि पर लगभग 20 प्रतिशत ही वन के थे जबकि इन वर्षों में भी सरकारी एवं गैर–सरकारी प्रयास वनों की सुरक्षा हेतु किये गए।

जहाँ एक ओर विकसित राष्ट्र को अत्यधिक उपयोग और पर्यावरण को क्षति पहुँचाने वाली जीवन शैलियों के लिए दोषी ठहराया जाता है, वहीं हम भी प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन करने में पीछे नहीं हैं। इस परिस्थिति में समाज, पंचायत एवं वन विभाग का काम आपसी गठबन्धन, सामाजिक वानिकी को प्रोत्साहित कर बड़ी मात्रा में इन समस्याओं से निजात दिला सकते है। वस्तुतः सामाजिक वानिकी एक ऐसी बहुउद्देशीय योजना है, जिसके सम्पूर्ण क्रियान्वयन से आर्थिक विकास को बढ़ावा मिलने के साथ ही साथ समाज के वातावरण को भी प्रदूषण रहित एवं अनुकूल बनाया जा सकता है। कृषि वैज्ञानिकों के द्वारा सामाजिक वानिकी को मुख्यतया तीन वर्गों में विभक्त किया गया है – कृषि, शहरी तथा ग्रामीण वानिकी।

1. कृषि वानिकी – कृषि वानिकी के अन्तर्गत फसल उत्पादन के साथ–साथ वृक्षारोपण का भी प्रावधान है। इसमें फलदार वृक्ष, औषधीय पौधे तथा सब्जियों को प्राथमिकता दी जाती है। फसलों तथा वृक्षों की परस्पर सफलता के लिए जरूरी है कि कृषि फसलों के अनुरूप वृक्ष प्रजातियों का चुनाव किया जाए। इस चुनाव में स्थान विशेष की मिट्टी, वर्षा, तापमान, आर्द्रता आदि की प्रमुख भूमिका होती है। इस तरह कृषि वानिकी खेतों का सामान्य पैदावार व गुणवत्ता को प्रभावित किये बिना ही ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत बनानी है। चूंकि ग्रामीण समाज परम्परागत कृषि को ही अपनाने पर जोर देता है और जोखिमपूर्ण तथा लम्बी अवधि वाली खेती को अपनाने में उदासीन होता है। अतः पंचायत का यह दायित्व बनता है कि वे अपने क्षेत्र के किसानों को प्रोत्साहित करें तथा इस तरह की कृषि हेतु सम्मान योजना का सूत्रण व क्रियान्वयन कर अपने क्षेत्र में सामाजिक वानिकी को विकसित करें। इसमें सरकारी अनुदान को छोटे किसानों तक पहुंचाकर पंचायत अपने इस दायित्व का निर्वहन कर सकती है।

2. शहरी वानिकी – शहरी वानिकी का लक्ष्य शहरी पर्यावरण में वृक्षारोपण को बढ़ावा देना है। अतः शहरों और कस्बों के पार्कों, घरों, सार्वजनिक मार्गों व खाली पड़ी भूमि पर सजावटी व आकर्षक किस्म के फलदार पौधे लगाये जाते हैं। यह पेड़–पौधे शहर की सुन्दरता तो बढ़ाते ही हैं, वहाँ के प्रदूषित वातावरण को स्वच्छ भी करते हैं।

3. ग्रामीण वानिकी – ग्रामीण वानिकी को दूसरे शब्दों में विस्तार वानिकी भी कहते हैं। ग्रामीण वानिकी के अन्तर्गत सामुदायिक भूमि, पंचायत भूमि, बंजर भूमि तथा सड़कों, रेलवे लाईनों, नहरों आदि के किनारे वृक्षारोपण किया जाता है। इसके अन्तर्गत उत्खनन से विकृत क्षेत्रों को पुनः उपयोगी बनाना, ग्रामीण सड़क निर्माण तथा अन्य कुटीर व लघु उद्योग के लिए कच्चे माल की आपूर्ति हेतु वृक्षों का विकास करना शामिल है। कृषि वानिकी के विपरीत इस वानिकी में प्रस्तुत भूमि पर स्वामित्व सामुदायिक होता है।

समुचित सामाजिक वानिकी को बढ़ावा देने हेतु सरकारी स्तर पर पंचायत से अधिक उपयुक्त कोई और दूसरा अभिकरण नहीं हो सकता है। कारण यह है कि पंचायत समाज के मध्य में स्थित है और वह किसानों की आवश्यकता एवं उनकी समस्याओं से भलीभांति परिचित है। अतः समेकित योजना एवं चरणबद्ध तरीकों से पंचायत, सामाजिक वानिकी के उद्देश्यों को पूर्ण कर सकती है। ज्ञातव्य है कि राष्ट्रीय बागवानी मिशन योजना के अन्तर्गत सम्पूर्ण देश में पंचायतों को उत्तरदायी बनाया गया है। अतः पंचायत, स्थानीय नागरिकों की सहभागिता से तथा सरकारी निर्देशों की पालना व क्रियान्वयन करके सचमुच पर्यावरण के अनुकूल वानिकी को विकसित कर सकती है।

भारत में वृक्षों के रूपान्तरण एवं पुनरूत्थान की असीम सम्भावनाएं हैं। चूंकि सामाजिक वानिकी के अन्तर्गत किसी क्षेत्र विशेष में वृक्षारोपण हेतु प्रजातियों का चुनाव स्थानीय लोगों की उपयोगिता तथा जलवायु कारकों यथा – तापमान, आर्द्रता, वर्षा, मिट्टी आदि को ध्यान में रखकर किया जाता है अतः पंचायत, जा कि एक लोकतान्त्रिक संस्था है, इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका

का निर्वाह कर सकती है। वह स्थानीय कृषि तकनीकों को विकसित कर सकती है तथा जरूरत पड़ने पर प्रायोगिक तौर पर सामुदायिक भूमि पर नयी कृषि तकनीक को आमन्त्रित कर सकती है।

यूं तो भारत में सर्वत्र नाइट्रोजन की कमी को देखते हुए नाइट्रोजन पौधों का ही चुनाव किया जाना बेहतर है फिर भी सामाजिक वानिकी के तहत चुनी हुई अधिकतर प्रजातियाँ प्रायः जल्दी तैयार होने वाली, अधिक उपजाऊ, सूखे को सहन करने वाली तथा बहुउद्देशीय होती है। साथ ही साथ ये लघु एवं कुटीर उद्योगों के स्त्रोत भी हो सकते हैं। जैसे – रेशमकीट पालन, मधुमक्खी पालन, टसर एवं जेट्रोफा की खेती, फल उत्पादन, मेन्था की खेती, फूल की खेती तथा लाख निर्माण आदि जैसे कुछ उपयोगी वनोत्पाद।

इस प्रकार सामाजिक वानिकी पर्यावरण की जरूरतों के अनुकूल रोजगार सृजन की असीम सम्भावनाऐं भी रखता है। आज सामाजिक वानिकी को पारिस्थितिक प्रणाली तथा पर्यावरण के पर्याय के रूप में मान लिया गया है जबकि पंचायत ग्रामीण विकास की प्रमुख संस्था है। यदि इन दोनों के घनिष्ट सम्बन्धों को अंगीकार कर लिया जाए तो इससे बहुत सारे रचनात्मक प्रभाव सामने आऐंगे। जैसे – जलीय सन्तुलन में सुधार, मृदा उर्वरता मे सुधार, वायु के आर्द्रता धारण में वृद्धि, पेड़–पौधों के लगने से मृदा अपरदन में कमी, चारागाहों का विकास, मरूस्थलीय क्षेत्रों में वृक्षारोपण से वन विस्तार आदि।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि सामाजिक वानिकी एक ऐसा तंत्र है, जिससे एक साथ कई समस्याओं से मुक्ति पायी जा सकती है। पंचायत के द्वारा अगर इन कार्यक्रमों को प्रभावी ढंग से लागू कर दिया जाए, तो ग्रामीणों की मूलभूत जरूरतों की पूर्ति तो होगी ही साथ ही वातावरणीय प्रदूषण, आंधी–तूफान, बाढ़, सूखा तथा मृदा अपरदन से भी निजात पायी जा सकती है तथा वन्य जीवों की सुरक्षा हेतु प्राकृतिक आवास भी उपलब्ध हो सकते है। हमें इस दिशा में आवश्यक सामाजिक लामबन्दी के लिए पंचायतों एवं ग्राम सभाओं सरीखी जमीनी स्तर की लोकतान्त्रिक संस्थाओं से लाभ उठाने की आवश्यकता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. सामाजिक वानिकी समाज, पंचायत एवं वन विभाग का एक ऐसा समन्वय है, जो रक्षित वनों पर समाज के भार को कम करता है तथा मानव शक्ति को वनोत्पादन की ओर प्रोत्साहित करता है।
2. सामाजिक वानिकी से ईंधन, चारा एवं उपयोगी लकड़ियाँ प्राप्त होगी तथा बढ़ती जनसंख्या का पर्यावरण पर भार भी कम हो सकेगा।
3. सामाजिक वानिकी को मुख्यतया कृषि, शहरी एवं ग्रामीण वानिकी में विभक्त किया गया है।
4. सामाजिक वानिकी के अन्तर्गत अधिकतर प्रजातियां प्रायः जल्दी तैयार होने वाली, अधिक उपजाऊ, सूखे को सहन करने वाली एवं बहुद्देशीय होती हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. भारत में सामाजिक वानिकी को सर्वप्रथम कब अपनाया गया–
   (अ) पांचवी पंचवर्षीय योजना
   (ब) छठी पंचवर्षीय योजना
   (स) आठवी पंचवर्षीय योजना
   (द) चौथी पंचवर्षीय योजना
2. इनमें से कौन सामाजिक वानिकी में सम्मिलित नहीं है–
   (अ) कृषि वानिकी (ब) शहरी वानिकी
   (स) वन वानिकी (द) ग्रामीण वानिकी

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. सामाजिक वानिकी को परिभाषित कीजिये।
2. भारत में सामाजिक वानिकी को सर्वप्रथम कब अपनाया गया और इसके अन्तर्गत कौनसे कार्यक्रम रखे गये?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. सामाजिक वानिकी के प्रमुख उद्देश्य लिखिये।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. सामाजिक वानिकी को परिभाषित कर, उसके प्रकारों का विस्तार से वर्णन कीजिये।

उत्तरमालाः 1 (ब) 2 (स)

अध्याय – 20

पर्यावरणीय परिवर्तन एवं कृषि

(Environmental Changes and Agriculture)

वर्तमान विश्व में बढ़ते औद्योगिकरण एवं बढ़ते वाहनों की संख्या से ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन में इजाफा हुआ है। बढ़ती ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन से वैश्विक तापमान में वृद्धि एवं जलवायु परिवर्तन जैसी घटनाओं ने समस्त विश्व का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। विश्व मौसम विज्ञान संगठन के अनुसार वर्ष 2001 इतिहास का पांचवा सबसे गर्म वर्ष रहा । गर्माती धरती का सबसे ज्यादा प्रभाव कृषि क्षेत्र पर पड़ रहा है। भारत के संदर्भ में यह चेतावनी इसलिए भी ज्यादा महत्वपूर्ण है क्योंकि भारतीय अर्थव्यवस्था की आधारशिला कृषि है। डेनमार्क की राजधानी कोपेहेगन में दिसम्बर 2009 में आयोजित सम्मेलन में ग्लोबल क्लाइमेट रिस्क इन्डेक्स (Global Climate Index) 2010 द्वारा जारी सूची में भारत उन प्रथम 10 देशों में है जो जलवायु परिवर्तन से सबसे ज्यादा प्रभावित होंगे। एक अध्ययन के अनुसार सन् 2050 तक शीतकाल का तापमान लगभग 3 से 4 डिग्री तक बढ़ सकता है। इससे मानसूनी वर्षा में 10 से 20 प्रतिशत तक की कमी होने का अनुमान है। वर्षा की मात्रा के परिवर्तन होने से फसलों की उत्पादकता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। जलवायु में होने वाला परिवर्तन हमारी राष्ट्रीय आय को प्रभावित कर रहा है। राष्ट्रीय आय में कृषि का हिस्सा पिछले तीन सालों में 1.5 प्रतिशत तक कम हुआ है। 2009 का वर्ष हमारे लिए एक चेतावनी भरा वर्ष रहा है। इस वर्ष 23 से 24 प्रतिशत तक वर्षा कम हुई जिससे देश के बहुत से भागों में खड़ी फसलें सूख गई जिससे न केवल खाद्यान्नों का उत्पादन कम हुआ बल्कि उनकी कीमतों में भी तेजी से वृद्धि हुई। एक अनुमान के अनुसार 2009 में सूखे की वजह से 20000 करोड़ रूपये के खाद्यान्नों का नुकसान हुआ है।

कोपेनहेगन में आयोजित सम्मेलन में कृषि वैज्ञानिक डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन ने भारतीय कृषि पर जलवायु परिवर्तन के पड़ने वाले प्रभावों के बारे में कहा कि इससे लगभग 64 प्रतिशत लोगों पर प्रभाव पड़ेगा जिनके जीवनयापन का साधन कृषि है और सबसे बड़ी चुनौती खाद्य सुरक्षा को लेकर है।

कृषि एवं जलवायु परिवर्तन का सबसे ज्यादा प्रतिकूल प्रभाव निम्न आय वर्ग पर पड़ रहा है जिनकी कुल आय का 50 प्रतिशत से भी ज्यादा हिस्सा अन्न, जल एवं स्वास्थ्य सम्बन्धित मदों पर खर्च होता है। ऐसा अनुमान है कि सूखे के कारण खरीफ की मुख्य फसलों, चावल व दलहन तथा तिलहन में 20 प्रतिशत तक की कमी हो सकती है। देश में खाद्य उत्पादन में 5 प्रतिशत कमी की संभावना जी.डी.पी. (सकल घरेलू उत्पादन) को एक प्रतिशत तक प्रभावित करेगी। वर्ष 2001 में मानसून के समय में बदलाव की वजह से 51 प्रतिशत तक कृषि भूमि प्रभावित हुई है। तापमान के बढ़ने से रबी की फसलों के पकने का समय कम हुआ है तापमान में तीव्र वृद्धि से फसलों में समय से पूर्व बालियाँ/फलियाँ आ गई जिससे गेहूँ व चने की फसलों के दाने बहुत पतले हो गए व उत्पादकता घट गई।

एक अध्ययन के अनुसार यदि तापमान में 1 से 4 डिग्री सेल्सियस तक वृद्धि होती है तो खाद्य पदार्थों के उत्पादन में 24 से 30 प्रतिशत तक की कमी आ सकती है। भारत में चावल के उत्पादन में तापमान बढ़ने से 2020 तक 6 से 7 प्रतिशत की कमी होगी जबकि गेहूँ के उत्पादन में 2020 तक 5 से 6 प्रतिशत, आलू के उत्पादन में 2020 तक 3 प्रतिशत तथा सोयाबीन के उत्पादन में 3 से 4 प्रतिशत की कमी होने का अनुमान है। जबकि भारत देश की जनसंख्या बढ़ने से सभी खाद्य पदार्थों की मांग में वृद्धि होगी परिणाम स्वरूप खाद्य संकट हमारे सामने एक भयंकर समस्या होगी।

जलवायु परिवर्तन से न केवल फसलों की उत्पादकता प्रभावित होगी बल्कि उनकी पौष्टिकता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। फल एवं सब्जियों वाली फसलों में फूल तो खिलेंगे लेकिन उनसे फल या तो बहुत कम बनेंगे या उनकी पौष्टिकता

प्रभावित होगी। भारत का विश्व प्रसिद्ध चावल बासमती भी जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों से बच नहीं पाएगा, उत्पादकता कम होने के साथ–साथ तापमान वृद्धि से इसकी खुशबू भी प्रभावित होगी।

तापमान वृद्धि से समुद्री जलस्तर बढ़ जाएगा जिससे तटीय इलाकों में रहने वाले करोड़ों लोगों की आजीविका प्रभावित होगी। समुद्री जल स्तर बढ़ने से लोगों के खेत व घर जलमग्न हो जाएंगे, भूमि क्षारीय हो जाएगी व कृषि योग्य नहीं रहेगी। तापमान बढ़ने से हिमालय के हिमनद प्रतिवर्ष 30 मीटर की दर से घट सकती है जिससे उत्तर भारत के राज्यों में खेती के लिए पानी की उपलब्धता का अप्रत्यक्ष प्रभाव कृषि उत्पादन पर पड़ सकता है तो दूसरी ओर अप्रत्यक्ष रूप से आय की हानि और अनाजों की बढ़ती कीमतों के रूप में समस्याओं का सामना करना पड़ेगा।

जलवायु परिवर्तन की वजह से कृषि के विभिन्न पक्ष निम्न प्रकार से प्रभावित हो सकते हैं –

1. जलवायु परिवर्तन का फसलों पर प्रभाव – अध्ययनों के आधार पर कृषि वैज्ञानिकों ने पाया कि प्रत्येक 10 सैल्सियस तापमान बढ़ने पर गेहूँ का उत्पादन 4–5 करोड़ टन कम होता जाएगा। इसी प्रकार 10 सैल्सियस तापमान बढ़ने से धान का उत्पादन 0.75 टन प्रति हैक्टेयर कम हो जाएगा। जलवायु परिवर्तन से फसलों की उत्पादकता ही प्रभावित नहीं होगी वरन् उनकी गुणवत्ता पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। अनाज में पोषक तत्वों और प्रोटीन की कमी हो जाएगी जिसके कारण संतुलित भोजन लेने पर भी मनुष्यों का स्वास्थ्य प्रभावित होगा।

2. जलवायु परिवर्तन का मृदा पर प्रभाव – भारत जैसे कृषि प्रदान देश के लिए मिट्टी की संरचना व उसकी उत्पादकता अहम स्थान रखती है। तापमान बढ़ने से मिट्टी की नमी और कार्यक्षमता प्रभावित होगी। मिट्टी में लवणता बढ़ेगी और जैव विविधता घटती जाएगी। बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं से जहाँ एक और मिट्टी का क्षरण अधिक होगा वहीं दूसरी ओर सूखे की वजह से भूमि की बंजरता बढ़ जाएगी।

3. जलवायु परिवर्तन का कीट व रोगों पर प्रभाव – जलवायु परिवर्तन से कीट व रोगों की मात्रा बढ़ेगी। गर्म जलवायु कीट पतंगों की प्रजनन क्षमता की वृद्धि में सहायक है। कीटों में वृद्धि के साथ ही उनके नियंत्रण हेतु ज्यादा मात्रों कीटनाशकों का प्रयोग किया जाएगा जिससे जानवरों व मनुष्यों में अनेक प्रकार की बीमारियाँ बढ़ने का खतरा है।

4. जलवायु परिवर्तन का जल संसाधनों पर प्रभाव – जलवायु परिवर्तन का सबसे ज्यादा प्रभाव जल संसाधनों पर पड़ेगा। जल आपूर्ति की समस्या उत्पन्न होगी तथा सूखे व बाढ़ की बारम्बारता में वृद्धि होगी। अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में शुष्क मौसम अधिक लम्बा होगा जिससे फसलों की उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। वर्षा की अनिश्चितता फसलों के उत्पादन को प्रभावित करेगी तथा जल स्रोतों के अधिक दोहन से जल स्रोतों में पानी की उपलब्धता घट जायेगी। अधिक तापमान व वर्षा की कमी से सिंचाई हेतु भू–जल संसाधनों का अधिक दोहन किया जाएगा। जिससे धीरे–धीरे भू–जल इतना ज्यादा नीचे चला जाएगा कि उसका दोहन करना आर्थिक दृष्टि से अलाभकारी सिद्ध होगा जैसा पंजाब, हरियाणा व प. उत्तरप्रदेश के बहुत से भू–खण्डों में हो रहा है।

भारतीय कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के अनेक उपाय हैं जिनको अपनाकर हम कुछ हद तक जलवायु परितर्वन के प्रभावों से कृषि को बचा सकते हैं। प्रमुख उपाय इस प्रकार हैं –

1. खेतों में जल प्रबंधन – तापमान वृद्धि के साथ फसलों में सिंचाई की अधिक आवश्यकता पड़ती है। ऐसे में जमीन में नमी का संरक्षण व वर्षा जल को एकत्रित करके सिंचाई हेतु प्रयोग में लाना एक उपयोगी एवं सहयोगी कदम हो सकता है। वाटरशेड प्रबंधन के माध्यम से हम वर्षा के पानी को संचित कर सिंचाई के रूप में प्रयोग कर सकते हैं। इस से जहाँ एक ओर हमें सिंचाई की सुविधा मिलेगी वहीं दूसरी ओर भूजल पुनर्भरण में भी मदद मिलेगी।

2. जैविक एवं समेकित खेती – खेतों में रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों के इस्तेमाल से जहाँ एक ओर मृदा की उत्पादकता घटती है वहीं दूसरी और इनकी मात्रा भोजन श्रृंखला के माध्यम से मानव के शरीर में पहुँच जाती है। जिससे अनेक प्रकार की बीमारियाँ होती हैं। रासायनिक खेती से हरित गृह गैसों के उत्सर्जन में भी वृद्धि होती है। अतः हमें जैविक खेती करने की तकनीकों पर अधिक से अधिक जोर देना चाहिए। एकल कृषि की बजाय हमें समेकित कृषि करनी चाहिए। एकल कृषि में जहाँ जोखिम अधिक होता है वहीं समेकित कृषि में जोखिम कम होता है। समेकित खेती में विभिन्न फसलों तथा सम्बद्ध कृषि उद्यमों से का उत्पादन किया जाता है जिससे यदि एक फसल या कृषि उद्यम किसी प्रकोप से प्रभावित हो जाए तो दूसरी फसल से किसान की रोजी रोटी चल सकती है।

3. फसल उत्पादन में नई तकनीकों का विकास – जलवायु परिवर्तन के गम्भीर दूरगामी प्रभावों को मद्देनजर रखते हुए फसलों की ऐसी किस्मों का विकास करना होगा जो बदलते

मौसम के अनुकूल हों। हमें ऐसी किस्मों को विकसित करना होगा जो अधिक तापमान, सूखे व बाढ़ की विभीषिकाओं को सहन करने में सक्षम हों। हमें लवणता एवं क्षारीयता को सहन करने वाली किस्मों को भी तैयार करना होगा।

4. फसली संयोजन में परिवर्तन – जलवायु परिवर्तन के साथ–साथ हमें फसलों के प्रारूप एवं उनके बोने के समय में भी परिवर्तन करना पड़ेगा। मिश्रित खेती व अंतर फसली कृषि करके जलवायु परिवर्तन के खतरों से निपटा जा सकता है। कृषि वानिकी अपनाकर भी हम जलवायु परितर्वन के खतरों को कम कर सकते हैं।

जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों से भारतीय कृषि को बचाने के लिए हमें अपने संसाधनों का न्यायसंगत इस्तेमाल करना होगा व भारतीय जीवन दर्शन को अपनाकर हमें अपने पारम्परिक ज्ञान को व्यवहार में लाना पड़ेगा। अब इस बात की विशेष आवश्यकता है कि हमें खेती में आधुनिक तकनीकों के साथ ऐसे पर्यावरण मित्र तरीकों को महत्ता देनी होगी जिनसे हम अपनी मृदा की उत्पादकता को बनाये रख सकें व अपने प्राकृतिक संसाधनों को बचा सकें।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. विश्व मौसम विज्ञान संगठन के अनुसार वर्ष 2001 इतिहास का पांचवा सबसे गर्म वर्ष रहा।
2. देश में खाद्य उत्पादन में 5 प्रतिशत कमी की सम्भावना जी.डी.पी. को 1 प्रतिशत तक प्रभावित करेगी।
3. वाटरशेड प्रबंधन के माध्यम से हम वर्षा के पानी को संचित कर सिंचाई के रूप में प्रयोग कर सकते हैं।
4. मिश्रित खेती व अंतर फसली कृषि से जलवायु परिवर्तन के फसलों पर नकारात्मक प्रभाव को कम करने में मदद मिलती है।
5. समेकित खेती में विभिन्न फसलों तथा सम्बद्ध कृषि उद्यमों से उत्पादन किया जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. जलवायु परिवर्तन से निम्न में से कौन प्रभावित होगा–
   (अ) फसलें (ब) जल संसाधन
   (स) कीट (द) उपरोक्त सभी
2. जलवायु परिवर्तन से मृदा की लवणता पर क्या प्रभाव पड़ेगा–
   (अ) बढ़ेगी (ब) घटेगी
   (स) अप्रभावित रहेगी (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. जलवायु परिवर्तन से आप क्या समझते हैं?
2. जलवायु परिवर्तन की वजह से कृषि पर होने वाले प्रभावों के नाम लिखिये।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. जलवायु परिवर्तन से कृषि को प्रभावित करने वाले कारकों को समझाइये।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. जलवायु परिवर्तन से कृषि को प्रभावित करने वाले कारक एवं इसके उपायों का विस्तृत वर्णन कीजिये।

उत्तरमाला: 1 (द) 2 (अ)

अध्याय – 21

राजस्थान में जैव विविधता

(Biodiversity in Rajasthan)

परिचय

विश्व में भारत जैव विविधता की धरोहर के रूप में जाना जाता है। यहाँ विभिन्न स्थानिक मौसमी दशाओं के परिणामस्वरूप विविध पारिस्थितिक तंत्र और प्राकृतिक आवास (जैसे वन, घास के मैदान, तट, समुद्र और रेगिस्तान) होने के कारण विशाल जैविक विविधता (जैसे पौधों, जानवरों और सूक्ष्म जीवों की विभिन्न प्रजातियाँ) पाई जाती है। हमारे जीवन के अस्तित्व और संपोषण के लिए जैव विविधता का संरक्षण करना भारतीय संस्कृति और जीवन पद्धति का एक भाग है। राष्ट्रीय विकास में जैव विविधता और पारिस्थिति प्रणाली सेवाएँ विशेष योगदान देती हैं।

भारत एक विशाल विविधता वाला देश है। भारत में विश्व का 2.4 प्रतिशत भूस्थल और 4 प्रतिशत स्वच्छ जल उपलब्ध है। यहाँ विश्व की दर्ज की गई कुल किस्मों की 7.8 प्रतिशत किस्में पाई जाती है। अब तक 45,968 पौधों की और 91,394 जन्तुओं की प्रजातियों का प्रलेख है। अनुमानित 3.75 अरब जीव प्रजातियों में से वैश्विक स्तर पर 278900 प्रजातियों की सूक्ष्म संरचनाओं का उल्लेख किया गया है।

राजस्थान देश की सबसे बड़ी भौगोलिक इकाई है। जलवायु, वर्षा विभिन्नता, भूआकृतिक विविधिता तथा शस्य परिस्थितियाँ के आधार पर राजस्थान को दस कृषि जलवायु क्षेत्रों में विभक्त किया गया है जिनका विवरण सारणी – 21.1 में दिया गया है।

राजस्थान में जैव विविधता के अध्ययन के लिए राजस्थान को तीन जैव भौगोलिक भागों में विभक्त किया गया हैं (चित्र 21.1)।

1. **मरूस्थलीय भाग** – राजस्थान का मरूस्थलीय भाग थार मरूस्थल के अन्तर्गत आता है। यह कम वर्षा व अत्यधिक गर्मी वाला क्षेत्र है। यह क्षेत्र वनस्पतियों के लिए प्रतिकूल है फिर भी भण्डारी, 1978 के अनुसार राजस्थान मरूस्थल में पुष्पी पादपों के 82 कुलों के 319 वंशों की 592 जातियाँ मिलती हैं। नागफनी, थोर, मूंज, सरकंडा, कीकर कूमटा, विलायती बबूल, हिंगोटा, खींप, ऊंटकटेली, आक, रोहिड़ा, बेर, केर, खेजड़ी आदि इस क्षेत्र की मुख्य वनस्पतियाँ हैं। अनेक अल्प–कालिक पादप प्रजातियाँ जैसे–लटजीरा, हुलहुल, नागार्जुनी, गोखरू, धोलफूली, पुनर्नवा आदि भी इस क्षेत्र में मिलती हैं। वन्य जीवों में मुख्य रूप से चिंकारा, काला हिरण, गीदड़, बिल्लियाँ, खरहा, भेड़िया, सर्प, छिपकली, चील, गोड़ावण आदि जन्तु पाये जाते हैं।
2. **पर्वतीय भाग** – प्रदेश के दक्षिणी–पश्चिमी छोर से उत्तर–पूर्वी सीमा तक फैली हुई अरावली पर्वत श्रृंखला तथा पूर्व व मध्य भागों में अरावली पर्वत श्रृंखला से मिलती हुई विन्ध्याचल की पहाड़ियां राजस्थान के पर्वतीय क्षेत्र का निर्माण करती है। यह 50 से 90 सेमी तक वर्षा का क्षेत्र है। यहां की वनस्पतियों में धोंक, अरूंज, खैर, कूमटा, सालर,

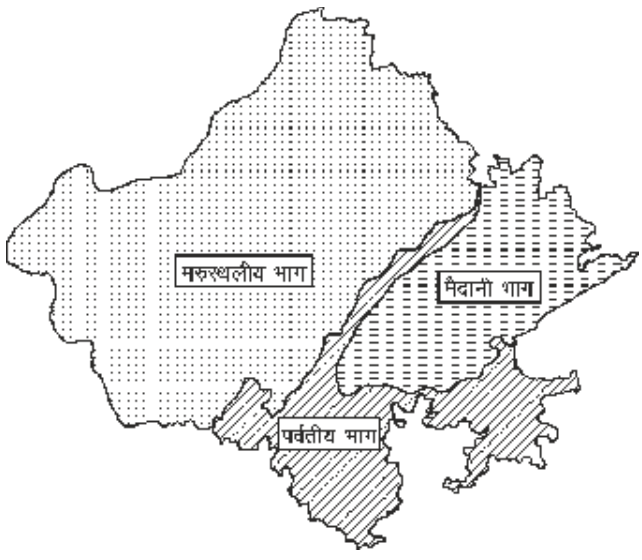

चित्र 21.1 : राजस्थान के जैव भौगोलिक क्षेत्र

तालिका 21.1: राजस्थान के कृषि जलवायु क्षेत्रों की मुख्य विशेषताएं एवं सस्य विविधता

क्र. सं.	कृषि जलवायु क्षेत्र	जिला/ब्लॉक का नाम	क्षेत्र (मि.है.)		वर्षा (मि.मी.)	तापमान (°C)		मुख्य फसलें		मृदा
			कुल	शुद्ध बुवाई		अधिकतम	न्यूनतम	खरीफ	रबी	
I–अ	पश्चिमी शुष्क मैदान	बाड़मेर जिले की बाड़मेर, बालोतरा, बायतू, सेहरा, धोरीमन्ना, सिणधरी, शिव तथा जोधपुर की बालेसर, बाप, भोपालगढ़ का कुछ भाग, लुणी, मण्डोर, ओसियां, फलौदी, शेरगढ़ तहसीलें	4.56	2.34	200 500	44.C	8.0	बाजरा, मोठ, ग्वार, तिल	गेहूँ, सरसों, जीरा	रेगिस्तानी मृदा और रेत के टीले, वातज मिट्टी, बनावट में मोटी रेत, कुछ स्थानों पर चूना जैसी
I–ब	उत्तरी पश्चिमी सिंचित मैदान	गंगानगर और हनुमानगढ़	2.06	1.60	180–350	42.0	4.7	कपास, ग्वार	गेहूँ, सरसों, चना	जलोढ़ कैल्शियम युक्त, उच्च घुलनशील लवण और विनिमय सोडियम, रेतीली मिट्टी और रेत के टीले, वातज मिट्टी, बनावट में कैल्शियम युक्त व बलुई मोटी
I–स	अति शुष्क आंशिक सिंचित क्षेत्र	बीकानेर एवं जैसलमेर जिले तथा चुरू की रतनगढ़, सरदार शहर एवं सुजानगढ़ तहसीलें	7.70	2.44	190–425	48.0	3.0	बाजरा, मोठ, ग्वार, मूंगफली	गेहूँ, सरसों, चना	रेगिस्तानी रेतीली मिट्टी और रेत के टीले, वातज मिट्टी, बनावट बलुई मोटी और कैल्शियम युक्त
II–अ	आंतरिक जल निकासी शुष्क क्षेत्र	नागौर, सीकर एवं झुंझुनू जिले तथा चुरू की चुरू, राजगढ़ एवं तारानगर तहसीलें	3.71	2.68	266–627	42.C	5.3	बाजरा ग्वार तिल दलहन	गेंहू, सरसों, चना	गड्ढों में रेतीली दोमट व भूरे रंग की गहरी लाल मिट्टी
II–ब	लूणी बेसिन का मैदान	जालोर एवं पाली जिले तथा सिरोही की रेवदर, शिवगंज एवं सिरोही तहसीलें, बाड़मेर की सिवाना तहसील तथा जोधपुर की बिलाड़ा तहसील एवं भोपालगढ़ तहसील का कुछ भाग	3.17	1.93	150–1275	38.0	4.9	बाजरा, ग्वार, तिल	गेहूँ, चना, जीरा	जोधपुर, जालोर व पाली में रेतीली लाल मिट्टी, पाली व सिरोही में सिरोजेम मिट्टी

मि.है. – मिलियन हैक्टेयर

क्र. सं.	कृषि जलवायु क्षेत्र	जिला/ब्लॉक का नाम	क्षेत्र (मि.है.)		वर्षा (मि.मी.)	तापमान (°C)		मुख्य फसलें		मृदा
			कुल	शुद्ध बुवाई		अधिकतम	न्यूनतम	खरीफ	रबी	
III–अ	अर्ध शुष्क पूर्वी मैदान	अजमेर, जयपुर एवं टोंक जिले तथा दौसा की बांदीकुई, दौसा, लालसोट व सिकराय तहसीलें	2.95	1.77	300–700	40.6	8.3	ज्वार, ग्वार, मूंग, उड़द, तिल	गेहूँ, सरसों, चना	पूर्वी भाग में जलोढ़, उत्तर–पश्चिम में लिथोसोल, पहाड़ियों के निचले भाग में भूरे रंग की मृदा
III–ब	बाढ़ प्रवण पूर्वी मैदान	अलवर, भरतपुर, धौलपुर एवं करौली जिले तथा दौसा की महुआ तहसील तथा सवाईमाधोपुर की बामणवास, बोनली व गंगानगर तहसीलें	2.44	1.41	140–700	40.0	8.2	बाजरा, ग्वार, मूंगफली	गेहूँ, सरसों, जौ, चना	जल जमाव के लिए प्रवण जलोढ़ मृदा, हाल ही में इस जलोढ़ की कैल्शियम प्रकृति प्रेक्षित की गई है।
IV–अ	उप–आर्द्र दक्षिणी मैदान	मीलवाड़ा, चित्तौड़गढ़ एवं राजसमन्द तथा सिरोही की आबुरोड़, पिंडवाड़ा तहसीलें, उदयपुर की बड़गाँव, मिण्डर, गिर्वा, गोगुन्दा, खेरवाड़ा, कोटड़ा, झाड़ोल, मावली व सराड़ा तहसीलें एवं प्रतापगढ़ की छोटी सादड़ी व प्रतापगढ़ तहसीलें	3.76	0.92	300–1470	38.6	8.1	मक्का, दलहन, सोयाबीन, ज्वार	गेहूँ, सरसों, चना	पहाड़ियों के निचले भागों में मिट्टी लिथोसोल और मैदानी में जलोढ़ है।
IV–ब	नम दक्षिणी मैदान	डूंगरपुर एवं बांसवाड़ा जिले तथा उदयपुर की सलुम्बर व प्रतापगढ़ की धरियावाद, पीपलखूंट व अरणोद तहसीलें	1.20	0.57	500–1050	39.0	7.2	मक्का, उड़द, धान	गेहूँ, सरसों, चना, मसाला फसलें	मुख्य रूप से लाल मध्यम बनावट, अच्छी तरह से सूखी कैल्शियम युक्त मृदा। पहाड़ी क्षेत्र में उथली किन्तु घाटियों में गहरी मृदा।
V	आर्द्र दक्षिणी पूर्वी मैदान	बाँरा, बून्दी, झालावाड़ एवं कोटा जिले तथा सवाईमाधोपुर की खण्डार व सवाईमाधोपुर तहसीलें	2.69	1.27	450–975	42.6	10.6	सोयाबीन, उड़द, गवार	गेहूँ, सरसों, धनिया, अफीम	मूल रूप से काली जलोढ़, दोमट मृदा, भूजल में लवणता।

गोदल, ढाक, तेन्दू, काला शीशम, चिरौंजी, अमलतास, जामुन, गूल, बांस, धोवन, बेल, करौंदा आदि मुख्य हैं। यहां पाये जाने वाले वन्य जीवों में बाघ, बघेरा, सियार, जरख, सांभर, रीछ, चीतल, नीलगाय, जंगली सुअर आदि प्रमुख है। इस क्षेत्र में 15 अभ्यारण्य हैं। प्रदेश की दोनों बाघ परियोजनाएं, सरिस्का व रणथम्भौर इसी क्षेत्र में स्थित है।

3. **मैदानी भाग** – यह अरावली पर्वत श्रृंखलाओं के पूर्व व दक्षिण–पूर्व में स्थित उपजाऊ मैदानी क्षैत्र है। इस क्षेत्र में स्थित छोटे–छोटे सरोवर स्थानीय व आवासीय पक्षियों को आश्रय प्रदान करते है। इस क्षेत्र में स्थित सेंथल सागर व हिंगोनिया तालाब को शिकार निषिद्ध क्षेत्र घोषित किया गया है। इस क्षेत्र में केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान तथा राष्ट्रीय चम्बल अभ्यारण्य स्थित है। यहां सागवान, बांस के वन, तेन्दु, सफेदा, धावड़ा, बहेड़ा, महुआ आदि वृक्ष पाये जाते हैं। वन्य जीवों की रक्षा के लिए सीतामाता, शेरगढ़ आदि को भी अभ्यारण्य का दर्जा दिया गया है। इस क्षेत्र में बघेरे, लकड़बग्घा, सांभर, तेन्दुआ, जंगली सुअर, चौसिंगा, उड़न गिलहरियां आदि प्रमुख वन्य जीव मिलते हैं।

जैव विविधता संरक्षण तथा विनियमन के महत्वपूर्ण पक्ष

मानव पर्यावरण और विकास पर स्टॉकहोम में 1972 में सम्मेलन से ही भारत पर्यावरण मामलों में अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों में भाग लेने लगा है। देश ने पर्यावरण मामलों सहित रूढ़िगत जैव विविधता पर बहुपक्षीय समझौतों का अनुसमर्थन करने में योगदान दिया है। जैव विविधता से सम्बन्धित वर्तमान रणनीति और कार्यक्रमों को बढ़ावा और समेकित करने के लिए जैव विविधता पर 1999 में एक राष्ट्रीय नीति और वृहत स्तर पर कार्य की रणनीति विकसित की गई। भारत में जैव विविधता अधिनियम 2002 बनाया जो 1994 में शुरू की गई कार्यवाही और प्रक्रिया का ही परिणाम है। भारत इस तरह का अधिनियम बनाने वाले कुछ देशों में शामिल है। इस अधिनियम का प्राथमिक उद्देश्य जैव विविधता के संवहन की व्यवस्था करना, जैव विविधता की अभिवृद्धि और इससे संबंधित परम्परागत ज्ञान के नियंत्रण सहित उनके प्रयोग के संबंध में हित लाभों का समान वितरण सुनिश्चित किया जा सके।

जैव विविधता प्रावधानों के लिए क्रियान्वयन प्रणाली

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जैव विविधता के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने जैव विविधता अधिनियम 2002 और जैव विविधता नियम 2004 अधिनियमित किये। तदानुसार अधिनियम के कार्यान्वयन के लिए राष्ट्रीय, राज्य और क्षेत्रीय स्तर पर कार्यप्रणाली तंत्र का निर्माण किया गया। अधिनियम की धारा 8 के अन्तर्गत चेन्नई, तमिलनाडु में अक्टूबर 2003 में भारत सरकार ने जैव विविधता प्राधिकरण की स्थापना की। राज्य सरकारों द्वारा जैव विविधता बोर्डों की स्थापना तथा क्षेत्रीय निकायों द्वारा जैव विविधता प्रबन्धन समितियों की स्थापना की गई। भारत सरकार ने 2008 में जैव विविधता कार्य योजना विकसित की।

राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण

राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण के कार्य

- जैव विविधता से संबंधित गतिविधियों, जैविक संसाधनों के प्रयोग में सभी घटकों की उचित सहभागिता तथा संपोषण के बारे में भारत सरकार को सलाह देना।
- जैविक संसाधनों की अभिवृद्धि के बारे में मार्गदर्शन, कृत्यों को नियंत्रित करना और हितलाभ सहभागिता की उचित तथा सही व्याख्या करना। जैविक संसाधनों को प्राप्त करने या संबंधित ज्ञान के प्रयोग के लिए ऐसे व्यक्तियों/राष्ट्रों/संगठनों आदि को राष्ट्रीय जैव प्राधिकरण का पूर्व अनुमोदन प्राप्त करना होता है।
- देश की जैव विविधता के संरक्षण के लिए जरूरी उपाय करना, जिसके तहत देश से बाहर जैविक संसाधन जो अन्य देशों को भारत से प्राप्त होते हैं, या इन जैविक संसाधनों से संबंधित ज्ञान जो भारत में प्रकट हुआ है उसे बौद्धिक सम्पदा के अधिकार देने का विरोध करना और आवश्यक उपाय करना शामिल है।
- जैव विविधता के महत्व के क्षेत्रों का चयन एवं उसके प्रबंधन के उपायों का चयन राज्य सरकार द्वारा करवाना तथा धरोहर स्थलों को अधिसूचित करवाना।
- जाति जैव विविधता पंजीकरण के लिए जैव विविधता बोर्ड तथा जैव विविधता प्रबन्धन समितियों को मार्गदर्शन तथा तकनीकी सहयोग देना।
- जैव विविधता अधिनियम, 2002 को लागू करने के लिए अन्य आवश्यक क्रियाकलापों का निर्वाह करना।

राज्य जैव विविधता बोर्ड

जैव विविधता अधिनियम की धारा 22 के अनुसार राज्य सरकारों ने सरकारी राजपत्र में अधिसूचना के अनुसार राज्य जैव विविधता बोर्डो की स्थापना की है। सात संघशासित क्षेत्रों में जैव विविधता प्राधिकरण या अन्य प्राधिकृत निकाय राज्य जैव विविधता बोर्ड की शक्तियों और कृत्यों का निर्वहन करता है।

राज्य जैव विविधता बोर्ड राज्य सरकारों द्वारा स्थापित किये गये हैं जिसमें एक अध्यक्ष और संबंधित विभागों का प्रतिनिधित्व करने वाले 5 सदस्य होते हैं।

राज्य जैव विविधता बोर्ड के कार्य

- जैव विविधता संरक्षण, जैविक संसाधनों के संपोषण और जैविक संसाधनों के प्रयोग से संबंधित साम्य हितलाभ सहभागिता से संबंधित मामलों पर केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी मार्गदर्शिका के विषय में राज्य सरकार को सलाह देना।
- राज्य में जैविक संसाधनों के वाणिज्यिक प्रयोग या जैविक सर्वेक्षण और जैविक प्रयोग के लिए निवेदन या अनुमोदन देने को नियंत्रित करना।
- जैव विविधता अधिनियम, 2002 को लागू करने के लिए या राज्य सरकार द्वारा आदेशित अन्य कृत्यों का निर्वहन करना।

जैव विविधता प्रबंध समितियाँ

जैव विविधता से संबंधित सूक्ष्म जीव संरचना के ज्ञान को लिपिबद्ध करने, घरेलू पशुधन और जानवरों की नस्लों, लोक किस्मों और कृषक भू–प्रजातियों के संरक्षण, प्राकृतिक आवासों के संरक्षण सहित जैव विविधता के प्रलेखन और संपोषण, संरक्षण बढ़ाने के उद्देश्य के लिए अपने क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत धारा 41 के अनुसार क्षेत्रीय निकायों ने जैव विविधता प्रबंधन समितियों का गठन किया है। इन जैव विविधता प्रबंधन समितियों का गठन जैव विविधता अधिनियम के नियम 22.1 के अनुसार किया गया है। इसमें एक अध्यक्ष तथा क्षेत्रीय निकायों द्वारा नामित 6 सदस्य होते हैं। जिसमें एक तिहाई महिला और 18 प्रतिशत अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के सदस्य होते हैं।

जैव विविधता प्रबंधन समितियों के कार्य

- क्षेत्रीय लोगों से सलाह करके जाति जैव विविधता पंजीयन करवाना तथा रखरखाव करना। जैव विविधता प्रबंध समिति एक रजिस्टर का रख–रखाव करती है जिसमें जैव विविधता अभिवृद्धि के विवरण के बारे में सूचनाएं और परम्परागत ज्ञान दिया होता है। वसूले गए शुल्क, प्राप्त लाभ तथा सहभागिता के कार्य का इसमें विवरण होता है।
- क्षेत्रीय वैद्यों और प्रयोगकर्ताओं द्वारा जैविक संसाधनों के प्रयोग के आंकड़े रखने संबंधी जो मामले राज्य जैव विविधता बोर्ड/प्राधिकरण द्वारा अनुमोदन प्राप्त करने के लिए विचारार्थ भेजे जाते हैं, उस पर सलाह देना।

हितलाभ दावेदारों के लिए भागीदारी सुनिश्चित करना, जैविक संसाधनों की उन्नति और संरक्षण या इन क्षेत्रों के सामाजिक आर्थिक विकास और संबंधित ज्ञान के लिए अधिनियम की धारा 27.32 और 43 के अन्तर्गत क्रमशः राष्ट्रीय राज्य और क्षेत्रीय स्तर पर जैव विविधता निधि की स्थापना की गई है।

राजस्थान राज्य जैव विविधता बोर्ड

जैव विविधता अधिनियम, 2002 की धारा 63 की उपधारा (1) के अन्तर्गत राजस्थान राज्य जैव विविधता बोर्ड प्रदत्त शक्तियों का उपयोग करते हुए राजस्थान सरकार द्वारा विज्ञप्ति दिनांक 02 मार्च, 2010 के माध्यम से राजस्थान जैव विविधता नियम, 2010 को लागू किया गया।

इस अधिनियम की धारा 22 के प्रावधानानुसार, राजस्थान सरकार द्वारा दिनांक 14 सितम्बर, 2010 से राजस्थान राज्य जैव विविधता बोर्ड की स्थापना की गई जिसके मुख्य उद्देश्य निम्न हैं–

- जैव विविधता के संरक्षण, उसके अवयवों के सतत् उपयोग एवं जैव संसाधनों के उपयोग से प्राप्त होने वाले लाभों में सहभागियों की उचित हिस्सेदारी से संबंधित पक्षों पर भारत सरकार द्वारा जारी दिशा–निर्देशों के अनुरूप राज्य सरकार को सलाह देना।
- राज्य में किसी भी जैव संसाधन के व्यावसायिक उपयोग या जैव सर्वेक्षण एवं जैव उपयोग हेतु प्रस्तुत आवेदनों को अनुमोदन करना या अन्यथ रूप से विनियमित करना।
- ऐसे कार्यों का निष्पादन करना जो जैव विविधता अधिनियम, 2002 के प्रावधानों को कार्यान्वित करने के लिये आवश्यक हो या जो राज्य सरकार द्वारा निर्दिष्ट किये जावें।

राजस्थान राज्य जैव विविधता बोर्ड की गतिविधियाँ (कार्य)

- जैव विविधता एवं इसके महत्व के बारे में जनसाधारण को जागरूक करना।
- जैव संसाधनों के विकेन्द्रित प्रबन्धन के लिये पंचायत, पंचायत समिति, जिला परिषद एवं नगरीय निकाय स्तर पर जैव विविधता प्रबन्ध समितियों का गठन करना।
- सम्बन्धित जैव विविधता प्रबन्ध समिति के माध्यम से स्थानीय व्यक्तियों के सहयोग से उस क्षेत्र की जैव विविधता, उसके उपयोग, परम्परागत ज्ञान एवं इससे सम्बन्धित उपयोग को लोक जैव विविधता पंजिका के रूप में अभिलिखित करना।
- क्षेत्र विशेष की लोक जैव विविधता पंजिका के आधार पर जैव संसाधनों के संरक्षण एवं प्रबन्धन का कार्य करना।
- राज्य के जैव विविधता विरासत स्थलों एवं देव वनों की पहचान करना तथा सम्बन्धित जैव विविधता प्रबन्ध समिति की सलाह अनुसार उनकी प्रबन्ध योजना तैयार करना।

- राज्य की वनस्पति एवं अन्य जैविक संसाधनों के संबंध में डिजिटाइज्ड अभिलेखों का संधारण करना।
- राज्य के जैव विविधता से संबंधित विषयों पर अध्ययन करना एवं करवाना।
- राज्य के जैव संसाधनों के व्यावसायिक उपयोग से संबंधित गतिविधियों को नियंत्रित करना।
- राज्य की जैव विविधता को प्रभावित करने वाली गतिविधियों को नियंत्रित करना।
- विद्यालयों, महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों के छात्रों, शिक्षकों, अन्वेषणकर्ताओं, वैज्ञानिकों, नीति निर्धारकों, जैव विविधता प्रबन्ध समिति के सदस्यों, उद्योगपतियों, किसानों, पशुपालकों एवं स्थानीय परम्परागत ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों के लिये जैव विविधता के संबंध में कार्यशालाओं का आयोजन करना।
- जैव विविधता अधिनियम, 2002 एवं राजस्थान जैव विविधता नियम, 2010 के प्रावधानानुसार राज्य के जैव संसाधनों तक पहुंच की अनुमति से संबंधित गतिविधियों को नियंत्रित करना।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. विभिन्न स्थानिक मौसमी दशाओं के परिणामस्वरूप विस्तृत क्षेत्र की पारिस्थितिकीय प्रणाली और प्राकृतिक वास के कारण भारत में वृहद जैव विविधता के रूप में पौधों, जानवरों और सूक्ष्मजीवों की विभिन्न प्रजातियां पाई जाती हैं।
2. सर्वप्रथम 5 जून, 1992 को संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर से जैव विविधता संरक्षण के लिए एक व्यापक अन्तर्राष्ट्रीय समझौता हुआ।
3. राजस्थान राज्य जैव विविधता बोर्ड, जैव विविधता के संरक्षण, उसके अवयवों के सतत् उपयोग के लिए राज्य सरकार को सलाह देती है।

बहुचयनात्मक प्रश्न

1. राजस्थान को कितने कृषि–जलवायु क्षेत्रों में विभक्त किया गया है–
   (अ) 10 (ब) 5
   (स) 15 (द) 20
2. राजस्थान को कितने जैव–भौगोलिक भागों में विभक्त किया गया है–
   (अ) 10 (ब) 3
   (स) 5 (द) 6
3. सर्वप्रथम संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर से जैव विविधता संरक्षण का अन्तर्राष्ट्रीय समझौता कब हुआ–
   (अ) 6 जून, 1992 (ब) 5 जून, 1992
   (स) 5 जून, 1994 (द) 8 जून, 1994
4. निम्न में से कौनसा जैव विविधता अधिनियम का उद्देश्य है–
   (अ) जैव विविधता के संवहन की व्यवस्था करना
   (ब) जैव विविधता की अभिवृद्धि
   (स) जैव विविधता से संबंधित परम्परागत ज्ञान का नियंत्रण
   (द) उपरोक्त सभी
5. राजस्थान जैव विविधता नियम कब लागू किया गया–
   (अ) 14 सितम्बर 2010 (ब) 2 मार्च 2010
   (स) 14 सितम्बर 2011 (द) 14 नवम्बर 2009

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. जैव विविधता को परिभाषित कीजिये।
2. भारत में जैव विविधता प्रावधानों के लिए की गई क्रियान्वयन प्रणाली लिखिये।
3. राजस्थान राज्य जैव विविधता बोर्ड के कोई दो कार्य लिखिये।
4. राष्ट्रीय व राज्यीय जैव विविधता अधिनियम कब लागू हुए?
5. जैव विविधता प्रबंध समितियों के कार्य लिख्यि।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. राजस्थान के विभिन्न कृषि–जलवायु क्षेत्रों के नाम लिखिये।
2. राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण के कार्य लिखिये।
3. राजस्थान राज्य जैव विविधता बोर्ड की विवेचना कीजिये।
4. भारत में जैव विविधता संरक्षण एवं विनियमन को लिखिये।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. राजस्थान के जैव भौगोलिक क्षेत्रों का वर्णन करिए।
2. राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण के कार्यों की विवेचना कीजिये।
3. जैव विविधता को समझाते हुए राजस्थान राज्य जैव विविधता बोर्ड का विस्तार से वर्णन कीजिये।

उत्तरमाला: 1 (अ) 2 (ब) 3 (ब) 4 (द) 5 (ब)